कल्याण
विचार
नाम

दुर्गति-नाशिनि दुर्गा जय जय, काल-विनाशिनि काली जय जय।
उमा रमा ब्रह्माणी जय जय, राधा सीता रुक्मिणि जय जय ॥
साम्ब सदाशिव, साम्ब सदाशिव, साम्ब सदाशिव, जय शंकर।
हर हर शंकर दुखहर सुखकर अघ-तम-हर हर हर शंकर ॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥
जय-जय दुर्गा, जय मा तारा। जय गणेश, जय शुभ-आगारा ॥
जयति शिवा-शिव जानकिराम। गौरीशंकर सीताराम ॥
जय रघुनन्दन जय सियाराम। व्रज-गोपी-प्रिय राधेश्याम ॥
रघुपति राघव राजा राम। पतितपावन सीताराम ॥

वार्षिक मूल्य भारतमें ७.५० विदेशमें १०.०० (१५ शिलिंग)

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय ॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय ॥
जय विराट जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते ॥

इस अङ्कका मूल्य ७.५० विदेशमें १०.०० (१५ शिलिंग)

सम्पादक—हनुमानप्रसाद पोद्दार, चिम्मनलाल गोस्वामी, एम्० ए०, शास्त्री
मुद्रक-प्रकाशक—हनुमानप्रसाद पोद्दार, गीताप्रेस, गोरखपुर

कल्याण
वर्ष ३५
संक्षिप्तयोगवासि

'कल्याण'के प्रेमी पाठक और ग्राहक महानुभावोंसे नम्र निवेदन

१· कल्याणका यह 'संक्षिप्त योगवासिष्ठाङ्क' प्रसिद्ध योगवासिष्ठ महारामायणका संक्षिप्त सार रूप है। योगवासिष्ठ एकमात्र सच्चिदानन्दघन ब्रह्म-तत्त्वका प्रतिपादक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। इसमें एक ही तत्त्वकी विविध सुन्दर कथाओंके तथा सुन्दर रोचक युक्तियोंके द्वारा सफलरूपसे स्थापना की गयी है। योग, योगसाधन, सदाचार, शास्त्रविधिपालन आदि महत्त्वपूर्ण विषयोंपर भी बहुत ही प्रभावशाली विवेचन किया गया है। इसकी कथाएँ भी बड़ी सुन्दर हैं। इस अङ्कमें ७०० पृष्ठोंकी सामग्री है। बहुरंगे १६, दुरंगा १, सादे १० तथा १३६ रेखाचित्र हैं। अङ्क बहुत सुन्दर तथा बड़ा ही उपयोगी है। हिंदीमें योगवासिष्ठका इस प्रकारका सारसंग्रहरूप यह पहला ही ग्रन्थ है और केवल ७.५० में ही उपलब्ध है। अतएव 'कल्याण'के प्रति प्रेम रखनेवाले प्रत्येक पाठक-पाठिकासे हमारा विनम्र निवेदन है कि वे विशेष प्रयत्न करके इसके कम-से-कम दो-दो नये ग्राहक अवश्य बना देनेकी कृपा करें। विशेषाङ्कके प्रकाशनमें अनिवार्य कारणोंसे कुछ देर हो गयी है। इसके लिये हम क्षमाप्रार्थी हैं।

२· जिन सज्जनोंके रुपये मनीआर्डरद्वारा आ चुके हैं, उनको अङ्क भेजे जानेके बाद शेष ग्राहकोंके नाम वी०पी० जा सकेगी। अतः जिनको ग्राहक न रहना हो, वे कृपा करके मनाहीका कार्ड तुरंत लिख दें, ताकि वी०पी० भेजकर 'कल्याण' को व्यर्थ नुकसान न उठाना पड़े।

३· मनीआर्डर-कूपनमें और वी०पी० भेजनेके लिये लिखे जानेवाले पत्रमें स्पष्टरूपसे अपना पूरा पता और ग्राहक-संख्या अवश्य लिखें। ग्राहक-संख्या याद न हो तो 'पुराना ग्राहक' लिख दें। नये ग्राहक बनते हों तो 'नया ग्राहक' लिखनेकी कृपा करें। मनीआर्डर 'मैनेजर' कल्याणके नाम भेजें, उसमें किसी व्यक्तिका नाम न लिखें।

४· ग्राहक-संख्या या 'पुराना ग्राहक' न लिखनेसे आपका नाम नये ग्राहकोंमें दर्ज हो जायगा। इससे आपकी सेवामें 'संक्षिप्त योगवासिष्ठाङ्क' नयी ग्राहक-संख्यासे पहुँचेगा और पुरानी ग्राहक-संख्यासे वी० पी० भी चली जायगी। ऐसा भी हो सकता है कि उधरसे आप मनीआर्डरद्वारा रुपये भेजें और उनके यहाँ पहुँचनेके पहले ही इधरसे वी० पी० चली जाय। दोनों ही स्थितियोंमें आपसे प्रार्थना है कि आप कृपापूर्वक वी० पी० लौटायें नहीं, प्रयत्न करके किन्हीं सज्जनको 'नया ग्राहक' बनाकर उनका नाम-पता साफ-साफ लिख भेजनेकी कृपा करें। आपके इस कृपापूर्ण प्रयत्नसे आपका 'कल्याण' नुकसानसे बचेगा और आप 'कल्याण' के प्रचारमें सहायक बनेंगे।

५ आपके 'विशेषाङ्क' के लिफाफेपर आपका जो ग्राहक-नंबर और पता लिखा गया है, उसे आप खूब सावधानीसे नोट कर लें। रजिस्ट्री या वी० पी० नंबर भी नोट कर लेना चाहिये।

६. 'संक्षिप्त योगवासिष्ठाङ्क' सब ग्राहकोंके पास रजिस्टर्ड-पोस्टसे जायगा। हमलोग जल्दी-से-जल्दी भेजनेकी चेष्टा करेंगे, तो भी सब अङ्कोंके जानेमें लगभग डेढ़ महीना तो लग ही सकता है; इसलिये ग्राहक महोदयोंकी सेवामें 'विशेषाङ्क' ग्राहक-संख्याके क्रमानुसार जायगा। यदि कुछ देर हो जाय तो परिस्थिति समझकर कृपालु ग्राहकोंको हमें क्षमा करना चाहिये और धैर्य रखना चाहिये।

७. 'कल्याण'—व्यवस्था-विभाग, 'कल्याण'—सम्पादन-विभाग, कल्याण-कल्पतरु (अंगरेजी), साधक-सङ्घ और गीता-रामायण-प्रचार-सङ्घके नाम गीताप्रेसके पतेपर अलग-अलग पत्र, पारसल, पैकेट, रजिस्ट्री, मनीआर्डर, बीमा आदि भेजने चाहिये तथा उनपर 'गोरखपुर' न लिखकर पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)—इस प्रकार लिखना चाहिये।

८. सजिल्द विशेषाङ्क वी० पी० द्वारा प्रायः नहीं भेजे जाते। सजिल्द अङ्क चाहनेवाले ग्राहक १.२५ (एक रुपया पचीस नये पैसे) जिल्दखर्चसहित ८.७५ (आठ रुपये पचहत्तर नये पैसे) मनीआर्डरद्वारा भेजनेकी कृपा करें। सजिल्द अङ्क देरसे जायँगे।

९. किसी अनिवार्य कारणवश 'कल्याण' बंद हो जाय तो जितने अङ्क मिले हों, उतनेमें ही वर्षका चंदा समाप्त समझना चाहिये; क्योंकि केवल इस विशेषाङ्कका ही मूल्य ७.५० (सात रुपये पचास नये पैसे) है।

'कल्याण'के पुराने प्राप्य विशेषाङ्क

२२ वें वर्षका नारी-अङ्क—पृष्ठ-संख्या ८००, चित्र २ सुनहरी, ९ रंगीन, ४४ इकरंगे तथा १९८ लाइनचित्र, मूल्य ६.२० (छः रुपये बीस नये पैसे), सजिल्द ७.४५ (सात रुपये पैंतालीस नये पैसे) मात्र।

२४ वें वर्षका हिंदू-संस्कृति-अङ्क—पृष्ठ ९०४, लेख-संख्या ३४४, कविता ४६, संगृहीत २९, चित्र २४८, मूल्य ६.५० (छः रुपये पचास नये पैसे), साथमें अङ्क २-३ बिना मूल्य।

२८ वें वर्षका संक्षिप्त नारद-विष्णुपुराणाङ्क—पृष्ठ-संख्या ८००, चित्र तिरंगे २०, इकरंगे लाइन-चित्र १९१ (फरमोंमें), मूल्य ७.५० (सात रुपये पचास नये पैसे), सजिल्द ८.७५ (आठ रुपये पचहत्तर नये पैसे)।

२९ वें वर्षका संतवाणी-अङ्क—पृष्ठ-संख्या ८००, तिरंगे चित्र २२ तथा इकरगे चित्र ४२, संतोंके सादे चित्र १४०, मूल्य ७.५० (सात रुपये पचास नये पैसे), सजिल्द ८.७५ (आठ रुपये पचहत्तर नये पैसे)।

३२ वें वर्षका भक्ति-अङ्क—जनवरी १९५८ का विशेषाङ्क, सजिल्द ८.७५ (आठ रुपये पचहत्तर नये पैसे)।

३३ वें वर्षका मानवता-अङ्क—जनवरी १९५९ का विशेषाङ्क, पूरी फाइलसहित, पृष्ठ-संख्या १४०८, रंगीन चित्र ३५, दुरंगा १, इकरंगे ३६, रेखाचित्र १९, मूल्य ७.५० (सात रुपये पचास नये पैसे), सजिल्द ८.७५ (आठ रुपये पचहत्तर नये पैसे)।

३४ वें वर्षका संक्षिप्त देवीभागवताङ्क—जनवरी १९६० का विशेषाङ्क केवल प्राप्य है। इस वर्षके साधारण अङ्क समाप्त हो गये हैं। मूल्य ७.५०, सजिल्दका ८.७५ है।

डाकखर्च—सबमें हमारा है।

व्यवस्थापक—कल्याण, पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)

श्रीहरिः

संक्षिप्त योगवासिष्ठाङ्ककी विषय-सूची

मुमुक्षु-व्यवहार-प्रकरण

उत्पत्ति-प्रकरण

स्थिति-प्रकरण

उपशम-प्रकरण

निर्वाण-प्रकरण पूर्वार्ध

निर्वाण-प्रकरण (उत्तरार्ध)

चित्र-सूची

बहुरंगे

दोरंगा

सादे

रेखा-चित्र

श्रीमन्महाभारतम्—केवल मूल (संस्कृतमात्र)

सम्पूर्ण ग्रन्थ चार भागोंमें, मूल्य २२.५०

श्रीमन्महाभारतम्-मूल प्रथम भाग-(आदि, सभा, वन ३ पर्व एक साथ) कपड़ेकी एक जिल्दमें रंगीन चित्र ३, पृष्ठ ८०४, मूल्य ६.००

" मूल द्वितीय भाग-(विराट, उद्योग, भीष्म, द्रोण ४ पर्व एक साथ) कपड़ेकी जिल्द, रंगीन चित्र ४, पृष्ठ ७४४, मूल्य ६.००

" मूल तृतीय भाग-(कर्ण, शल्य, सौप्तिक, स्त्री, शान्ति ५ पर्व एक साथ) कपड़ेकी जिल्द, रंगीन चित्र ४, सादा १, पृष्ठ-संख्या ७५६, मूल्य ६.००

" चतुर्थ भाग-(अनुशासन, आश्वमेधिक, आश्रमवासिक, मौसल, महाप्रस्थानिक, स्वर्गारोहण ६ पर्व एक साथ) कपड़ेकी जिल्द, चित्र ३ रगीन, ३ सादा, पृष्ठ-संख्या ४७२, मूल्य ४.५०

महाभारतसम्बन्धी अन्य ग्रन्थ

महाभारत-खिलभाग हरिवंश (हरिवंशपुराण)-हिंदी-भाषाटीकासहित रंगीन चित्र ८, सादा ४०, पृष्ठ ११६०, मू० ११.५०

जैमिनीयाश्वमेधपर्व-हिंदी अनुवादसहित रगीन चित्र ३, सादा १५, पृष्ठ-सख्या ४१८, मूल्य .. ५.००

महाभारतकी नामानुक्रमणिका-महाभारतमें आये हुए कौन नाम कहाँ किस प्रसङ्गमें आये हैं उसकी अनुक्रमणिका, पृष्ठ ४१६, मूल्य २.५०, सजिल्द ३.५०

महाभारत-परिचय-(महाभारतके सम्बन्धमें विद्वानोंके महत्त्वपूर्ण निवन्ध) पृष्ठ-सख्या २५६, मूल्य १.७५, सजिल्द २.५०

सनत्सुजातीय शांकरभाष्य-हिंदी-अनुवादसहित रंगीन चित्र २, पृष्ठ-संख्या १३६, मूल्य ... २.००

गीताप्रेसद्वारा प्रकाशित तीन वड़ी पुस्तकें

(१) सम्पूर्ण महाभारत—(सचित्र, सरल हिंदी-अनुवादसहित)

सम्पूर्ण ग्रन्थ छः खण्डोंमें (सजिल्द) साइज २२×३० आठपेजी, मोटे ग्लेज कागज, पृष्ठ-संख्या ६६२०, चित्र-बहुरंगे ७९, इकरंगे २२५ तथा लाइन ५६४ कुल ८६८ । मूल्य पूरे ग्रन्थका एक साथ ६५.०० ।

प्रत्येक खण्ड अलग-अलग भी मिलते हैं । विवरण इस प्रकार है—

(१) प्रथम खण्ड-आदिपर्व और सभापर्व—पृष्ठ ९६२, चित्र १५७, मू० ११.०० ।
(२) द्वितीय खण्ड-वनपर्व और विराटपर्व—पृष्ठ ११९०, चित्र २६६, मू० १२.५० ।
(३) तृतीय खण्ड-उद्योगपर्व और भीष्मपर्व—पृष्ठ १०७६, चित्र १३९, मू० १२.५० ।
(४) चतुर्थ खण्ड-द्रोण, कर्ण, शल्य, सौप्तिक और स्त्रीपर्व—पृष्ठ १३४६, चित्र १४४, मू० १५.०० ।
(५) पञ्चम खण्ड-शान्तिपर्व— पृष्ठ १०१४, चित्र ५७, मू० ११.५० ।
(६) षष्ठ खण्ड-अनुशासन, आश्वमेधिक, आश्रमवासिक, मौसल, महाप्रस्थानिक और स्वर्गारोहणपर्व—पृष्ठ १११२, चित्र १०५, मू० १२.५० ।

६६२०, ८६८ ७५.०० ।

(२) श्रीशुक-सुधा-सागर—श्रीमद्भागवत बारहों स्कन्धोंकी सरल हिंदी व्याख्यासहित साइज बहुत बड़ी, २२×२९ चार पेजी, मोटे ग्लेज कागज, पृष्ठ-सख्या १३६०, सुन्दर बहुरगे २० चित्र, बढ़िया जिल्द, मोटे टाइप मूल्य २०.०० मात्र ।

(३) श्रीरामचरितमानस—(श्रीमद्गोस्वामी तुलसीदासकृत सटीक, बृहदाकार, मोटा टाइप) साइज बहुत बड़ी, २२×२९ चार पेजी, मोटे ग्लेज कागज, पृष्ठ-सख्या ९८४, सुन्दर बहुरगे ८ चित्र, बढ़िया जिल्द, मूल तथा अर्थ दोनोंके टाइप मोटे, मूल्य १५.०० मात्र ।

तीनों पुस्तकोंका एक साथ मूल्य १००) कमीशन काटकर नेट ८५.०० पैकिंग फ्री, रेलपार्सलसे आपके स्टेशन-तकका रेलभाड़ा हमारा ।

श्रीराम तीर्थयात्राके लिये पिता दशरथसे आज्ञा माँग रहे हैं (वैराग्य-प्रकरण सर्ग ३)

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

यतः सर्वाणि भूतानि प्रतिभान्ति स्थितानि च । यत्रैवोपशमं यान्ति तस्मै सत्यात्मने नमः ॥
यत्सर्वं खल्विदं ब्रह्म तज्जलानिति च स्फुटम् । श्रुत्वा ह्युदीर्यते साम्नि तस्मै ब्रह्मात्मने नमः ॥

वर्ष ३५ } गोरखपुर, सौर माघ २०१७, जनवरी १९६१ { संख्या १ पूर्ण संख्या ४१०

महर्षि वसिष्ठजीको नमस्कार

ब्रह्मानन्दं परमसुखदं केवलं ज्ञानमूर्तिं
द्वन्द्वातीतं गगनसदृशं तत्त्वमस्यादिलक्ष्यम् ।
एकं नित्यं विमलमचलं सर्वधीसाक्षिभूतं
भावातीतं त्रिगुणरहितं श्रीवसिष्ठं नताः स्म ॥
—सुतीक्ष्ण (नि० प्र० उ० २१६ । २६)

भगवान् श्रीरामको नमस्कार

आद्यन्तवर्जितविशालशिलान्तराल-
सम्पीटचिद्घनवपुर्गगनामलस्त्वम् ।
स्वस्थो भवाऽऽजरपल्लवकोमलेन-
लीलास्थिताखिलजगज्जय ते नमस्ते ॥
—वसिष्ठ (नि० प्र० पू० २ । ६०)

योगवासिष्ठमें भगवान् श्रीरामके स्वरूप तथा माहात्म्यका प्रतिपादन

महर्षि वसिष्ठकी प्रेरणासे दशरथके दरबारमें समस्त ऋषि-मुनियों-महानुभावोंको सम्बोधन करके महर्षि विश्वामित्र भगवान् श्रीरामके स्वरूपका प्रतिपादन करते हुए कहते हैं—

अत्रैव कुरु विश्वासमयं स पुरुषः परः।
विश्वार्थमथिताम्भोधिर्गम्भीरागमगोचरः ॥
परिपूर्णपरानन्दः समः श्रीवत्सलाञ्छनः।
सर्वेषां प्राणिनां राम. प्रदाता सुप्रसादितः ॥
अयं निहन्ति कुपितः सृजत्ययमसत्सकान्।
विश्वादिर्विश्वजनको धाता भर्ता महासखः ॥

(नि० प्र० पूर्वार्ध १२८ । ८१–८३)

सज्जनो ! आप सब लोग यह विश्वास कीजिये कि ये श्रीरामचन्द्रजी ही परम पुरुष परमात्मा हैं । इन्होंने ही विश्वहितके लिये विष्णुरूपसे क्षीरसागरका मन्थन किया था। गम्भीर रहस्यसे भरे उपनिषदादि शास्त्रोंके तत्त्वगोचर साक्षात् परब्रह्म ये ही हैं। परिपूर्ण परमानन्द, सम-स्वरूप, श्रीवत्सके चिह्नसे सुशोभित भगवान् श्रीरामचन्द्र जब भलीभाँति प्रसन्न हो जाते हैं, तब अपनी कृपासे सम्पूर्ण प्राणियोंको मोक्ष प्रदान कर देते हैं। यही भगवान् श्रीरामचन्द्रजी कुपित होकर रुद्र-रूपसे जगत्का संहार करते हैं, यही ब्रह्मारूपसे इस विनाशी जगत्का सृजन करते हैं। यही विश्वके आदि, विश्वके उत्पादक, विश्वके धाता, पालनकर्ता और महान् सखा भी हैं।

अयं त्रयीमयो देवस्त्रैगुण्यगहनातिगः।
जयत्यङ्गैरयं षड्भिर्वेदात्मा पुरुषोऽद्भुतः ॥
अयं चतुर्बाहुरयं विश्वस्रष्टा चतुर्मुखः।
अयमेव महादेवः संहर्त्ता च त्रिलोचनः ॥
अजोऽयं जायते योगाज्जागरूकः सदा महान्।
विभर्ति भगवानेतद्विरूपो विश्वरूपवान् ॥

(नि० प्र० पूर्वार्ध १२८ । ८६–८८)

यही भगवान् श्रीराम ऋक्-यजु-सामवेदमय हैं, तीनों गुणोंसे अतीत अतिगहन यही हैं और छः अङ्गोंसे युक्त वेदात्मा अद्भुत पुरुष भी यही हैं। विश्वका पालन करनेवाले चतुर्भुज विष्णु यही हैं, विश्वके स्रष्टा चतुर्मुख ब्रह्मा यही हैं और समस्त विश्वका संहार करनेवाले त्रिलोचन भगवान् महादेव भी यही हैं। ये अजन्मा रहते हुए ही अपनी योग-माया—लीलासे अवतार लेते हैं, ये सर्वदा सबसे महान् हैं, ये सदा जागते रहते हैं, त्रिगुणात्मकरूपसे रहित हुए भी ये विश्वरूपवान् हैं। यही भगवान् इस विश्वको अपने संकल्पसे धारण करते हैं।

अयं दशरथो धन्यः सुतो यस्य परः पुमान्।
धन्यः स दशकण्ठोऽपि चिन्त्यश्चित्तेन योऽमुना ॥
राम इत्यवतीर्णोऽयमर्णवान्तःशयः पुमान्।
चिदानन्दघनो रामः परमात्मायमव्ययः ॥
निगृहीतेन्द्रियग्रामा रामं जानन्ति योगिनः।
वयं त्ववरमेवास्य रूपं रूपयितुं क्षमाः ॥

(निर्वाण-प्रकरण पूर्वार्ध १२८ । ९०, ९२, ९३)

ये महाराज दशरथ धन्य हैं, जिनके पुत्र परमपुरुष परमात्मा स्वयं हुए। यह दशकण्ठ रावण भी धन्य है, जिसका ये भगवान् अपने चित्तसे चिन्तन करेंगे। क्षीरसागरमें शयन करनेवाले श्रीविष्णु भगवान् ही श्रीरामचन्द्रके रूपमें अवतीर्ण हैं। ये श्रीराम साक्षात् सच्चिदानन्दघन अविनाशी परमात्मा हैं। मन-इन्द्रियोंपर विजय प्राप्त किये हुए योगीजन ही इन श्रीरामजीको यथार्थरूपमें जानते हैं। हमलोग तो इनके बाहरी स्वरूपके निरूपणकी ही क्षमता रखते हैं।

इसके पहले महर्षि विश्वामित्रजीने भगवान् श्रीरामकी भावी लीलाओंका वर्णन करते हुए समस्त ऋषि-मुनि, सिद्ध-देवताओंसे यहाँतक कह दिया था—

यैर्दृष्टो यैः स्मृतो वापि यैः श्रुतो बोधितस्तु यैः।
सर्वावस्थागतानां तु जीवन्मुक्तिं प्रदास्यति ॥

× × ×

अनेन रामचन्द्रेण पुरुषेण महात्मना।
नमोऽस्मै जितमेवैते कोऽप्येवं चिरमेधताम् ॥

(निर्वाण प्रकरण पूर्वार्ध १२८ । ७४-७६)

जो लोग भगवान् श्रीरामका दर्शन करेंगे, उनके लीला-चरित्रका स्मरण या श्रवण करेंगे और जो लोग इनके स्वरूप तथा लीलाचरित्रोंका परस्पर बोध करायेंगे, उन सम्पूर्ण अवस्थाओंमें स्थित पुरुषोंको भगवान् श्रीराम जीवन्मुक्ति प्रदान करेंगे।

× × ×

सज्जनो ! आप सब लोग इन भगवान् श्रीरामचन्द्रजीको नमस्कार कीजिये। इनके नमस्कारसे ही आपलोग अनायास ही समस्त अज्ञानजनित जगत्पर विजय प्राप्त करेंगे। किसी भी दूसरे साधनकी आवश्यकता नहीं होगी। आपलोग चिर-कालतक प्रगति करें !

कल्याण

याद रक्खो—मैं, तुम, यह, वह, सृष्टि, संहार आदि रूपसे जो दृश्यप्रपञ्च दिखायी दे रहा है, वह एकमात्र अद्वितीय नित्य निर्मल शान्त चिन्मय ब्रह्मकी ही अभिव्यक्ति है। इन समस्त सत्-रूपसे दीखनेवाले असत् पदार्थोंमें एकमात्र सत् परमात्मा ही प्रकट है। वह सच्चिदानन्दघन ब्रह्म ही यह सम्पूर्ण जगत् है। उसके अतिरिक्त जगत् नामकी कोई सत् वस्तु कभी न थी, न है।

याद रक्खो—आकाशकी शून्यता आकाश ही है, जलकी द्रवता जल ही है, प्रकाशकी आभा प्रकाश ही है, वायुका स्पन्दन वायु ही है, समुद्रकी तरङ्गें समुद्र ही हैं, बर्फकी शीतलता बर्फ ही है, काजलकी कालिमा काजल ही है—ठीक वैसे ही जैसे ब्रह्ममें दीखनेवाला यह समस्त जगत् भी ब्रह्म ही है।

याद रक्खो—जैसे स्वप्नमें दीखनेवाले दृश्य, बालकको दीखनेवाला वेताल, रज्जुमें दीखनेवाला सर्प, स्वर्णमें दीखनेवाले कड़े-बाजूबंद, प्रशान्त महासागरमें उठनेवाली तरङ्गें और आवर्त, मिट्टीमें दीखनेवाले घड़े-सिकोरे और आकाशमें दीखनेवाले नगर-घर आदि सब उपाधिमात्र हैं, भ्रममात्र हैं, वैसे ही ब्रह्ममें दीखनेवाला यह सम्पूर्ण जगत् भ्रममात्र है। वस्तुतः उसकी कोई भिन्न सत्ता है ही नहीं।

याद रक्खो—यह समस्त जगत् वस्तुतः भ्रान्तिसे ही जगद्रूप दीखता है। यथार्थ तत्त्वका ज्ञान होनेपर यह जगद्भ्रम वैसे ही नष्ट हो जाता है जैसे रस्सीका ज्ञान होनेपर सर्पकी भ्रान्ति नष्ट हो जाती है। अथवा आकार तथा नामकी व्यावहारिक विभिन्नता प्रतीत होते हुए भी जैसे स्वर्णका ज्ञान होनेपर स्वर्ण-भूषणोंके नाम-रूपके कारण होनेवाली विभिन्नता तथा भिन्नरूपता नष्ट हो जाती है—एकमात्र स्वर्ण ही दीखने लगता है, वैसे ही ब्रह्मका ज्ञान होनेपर विभिन्न नामरूपात्मक यह विशाल विश्व ब्रह्मरूप ही दीखने लगता है, कहीं भी कोई भिन्न सत्ता रहती ही नहीं। वास्तवमें तो सच्चिदानन्दघन परमात्माके अतिरिक्त और कुछ है ही नहीं।

याद रक्खो—यह समस्त दृश्य जगत् तथा इसमें होनेवाली सभी क्रियाएँ चिदानन्दघन ब्रह्मका ही संकल्प है। वह संकल्प भी ब्रह्म ही है। ब्रह्म जगत्का कारण नहीं है क्योंकि जगत्रूपी कार्य सर्वथा असत् ही है। नित्य सत्य ब्रह्मसे अनित्य असत् जगत्की उत्पत्ति, नित्य निरतिशय दिव्य परमानन्दघन परमात्मासे दुःखपूर्ण जगत्की उत्पत्ति, प्रकाशमय परब्रह्मसे तमोमय जगत्की उत्पत्ति सम्भव ही नहीं। अतएव ब्रह्म तथा जगत्में कारण-कार्यभाव नहीं है; ब्रह्म ही जगत्रूपमें भासित हो रहा है। उस चिदाकाशमें ही चिदाकाशने यह सब खेल हो रहे हैं। उसके अतिरिक्त अन्य कुछ है ही नहीं।

याद रक्खो—जब एक ब्रह्मके अतिरिक्त कोई सत्ता ही नहीं रह जाती, तब भिन्न अहंकार कहाँ रहेगा और अहंकारका अभाव होते ही राग-द्वेष, ममता-मोह, मेरा-तेरा आदि सब मिथ्या विकार मिट जाते हैं जैसे स्वप्नसे जागते ही स्वप्नका सारा संसार सर्वथा मिट जाता है। फिर जगत्में रहता हुआ भी इस ज्ञानको प्राप्त जीवन्मुक्त पुरुष नित्य निरन्तर ब्रह्ममें ही स्थित रहता है। वह जगत्के आदि, मध्य, अन्त सभी अवस्थाओंमें समचित्त रहता है, क्योंकि तब उसका चित्त ही नहीं रह जाता। अतएव वह न तो प्राप्त हुई प्रिय लगनेवाली वस्तुका अभिनन्दन करता है, न अप्रियसे द्वेष करता है, न नष्ट हुई प्रिय वस्तुके लिये शोक करता है और न अप्राप्त वस्तुकी इच्छा ही करता है।

याद रक्खो—ऐसा परमतत्त्वको प्राप्त—ब्रह्ममें अभिन्नभावसे स्थित पुरुष जगत्की क्षणभंगुर अवस्थाको अपनी प्रशान्त ब्राह्मी स्थितिके अंदर हँसता हुआ देखता है। उसके लिये न कुछ पाना शेष रह जाता है, न कुछ करना रह जाता है। वह सर्वव्यापी परब्रह्म परमात्मस्वरूप ही बन जाता है। यही योगवासिष्ठकी शिक्षा है।

'शिव'

एकश्लोकी योगवासिष्ठ

(लेखक—तत्त्वचिन्तक स्वामीजी श्रीअनिरुद्धाचार्यजी वेंकटाचार्यजी महाराज)

एक बार भगवान् रामने महर्षि वसिष्ठसे पूछा कि सार्थक एवं सफल जीवनवाले मानवकी पहचान क्या है ? इसके उत्तरमें रघुकुलगुरु ब्रह्मनिष्ठ ब्रह्मर्षि वसिष्ठने जो अल्पाक्षरा किंतु अर्थबहुला, एकश्लोकी वाणी, जिसमें 'बीजे वृक्षमिव' सारा 'योगवासिष्ठ' भरा हुआ है, समुच्चारित की थी, वह सचमुच गागरमें सागरकी तरह योगवासिष्ठका समग्र उपादेय तत्त्व निचोड़कर एक श्लोकमें भर देती है। महर्षि-प्रवरकी अर्थभारवती वह वाणी इस प्रकार है—

तरवोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः ।
स जीवति मनो यस्य मननेनोपजीवति ॥
(योगवासिष्ठ)

महर्षि वसिष्ठका अनुभूत कथन है कि जीवनतत्त्व, (प्राणशक्ति) जिसे 'वैशेषिकदर्शन'ने 'सजाकर्म त्वसद्विशिष्टानां लिङ्गम्' इस सूत्रद्वारा 'अध्यात्मवायु' और सांख्यने 'सामान्यकरणवृत्तिः प्राणाद्या वायवः पञ्च' कहकर 'अन्तःकरण-क्रिया' की संज्ञा दी है, मानव, पशु-पक्षी आदि सबमें साधारणतया समान है। किंतु मनुष्यको मृगादि पशु-पक्षियोंसे विभक्तकर उच्चश्रेणीमें समासीन करनेवाली मनन-शक्ति ही है, जिसके विकसित होनेपर ही प्राणी 'मानव' कहला सकता है। महर्षि यास्कने भी निरुक्तमें 'मत्वा कर्माणि सीव्यन्ति इति मनुष्यः' कहकर वासिष्ठी उक्तिका समर्थन किया है।

वेदके मतमें जीवनका अर्थ है—प्राण। यह प्राणिमात्रमें सामान्य है। केवल इसीका विकास जबतक मानवमें है, तबतक मानव जन्तु ही है। संस्कृत भाषाने 'मानव और माणव' के भेदको व्यक्त करते हुए कहा है कि केवल प्राणशक्तिका विकास-स्थल 'माणव' (जन्तु-विशेष) और प्राणशक्ति तथा मनन-शक्ति दोनोंका विकासकेन्द्र मानव है। मानवको द्विपादी जन्तुविशेषकी हीन कक्षासे निकालकर मानवताकी उच्चश्रेणीमें पहुँचानेवाली तो मननशक्ति ही है। वेदने भी मननशक्तिको ही 'मानवता' माना है। अतः 'योगवासिष्ठ' के मतसे मानवता-पालनपूर्वक जीवन-यापन करनेवाला ही मानव है। इसी विशिष्ट उपदेशको आत्मसात् करानेके उच्च उद्देश्यसे समग्र 'योगवासिष्ठ' प्रवृत्त हुआ है। प्रस्तुत विशिष्ट उपदेशको विश्वहितके लिये प्रसारित करनेके कारण ही ग्रन्थका नाम 'वासिष्ठ' रखा गया है। वैदिक भाषामें विशिष्टका बोधक वसिष्ठ शब्द है।

वासिष्ठ-बोध-सार

जग कहते हो जिसे जगमग ब्रह्म ही है,
जन्मका जगत्के न कारण है क्रम है।
चित्से अचित्के विकासकी आस किसे,
होता कहीं प्रकट प्रकाशसे भी तम है ?
कैसे बना, किसने बनाया, किससे है बना—
यह सब जाननेका व्यर्थ सभी श्रम है।
मिथ्या कल्पनाका एक नूतन निकेतन है,
चेतन आकाशमें अचेतनका भ्रम है ॥

—पाण्डेय रामनारायणदत्त शास्त्री 'राम'

योगवासिष्ठकी श्रेष्ठता और समीचीनता

(लेखक—प० श्रीजानकीनाथजी शर्मा)

योगवासिष्ठके अध्येता तथा मननकर्ताओंसे यह बात छिपी नहीं है कि यह ग्रन्थ भारत ही नहीं, विश्वसाहित्यमें ज्ञानात्मक, सूक्ष्मविचार-तत्त्वनिरूपक तथा श्रेष्ठ सदुक्तिपूर्ण ग्रन्थोंमें सर्वश्रेष्ठ है। यह महारामायण, वासिष्ठरामायण आदि नामोंसे भी विख्यात है। स्वयं भगवान् वसिष्ठने ही कहा है कि 'संसार-सर्पके विषसे विकल तथा विषयविषूचिकासे पीड़ित मृतप्राय प्राणियोंके लिये योगवासिष्ठ परम पवित्र अमोघ गारुड-मन्त्र है। इसे सुन लेनेपर जीवन्मुक्ति-सुखका अनुभव होता है।'* स्वामी रामतीर्थ कहा करते थे कि 'योगवासिष्ठ मेरे लिये सर्वाधिक आश्चर्य एवं चमत्कारपूर्ण ग्रन्थ है।'† डा० भगवानदासने 'मिस्टिक एक्सपिरियन्सेज' पुस्तककी प्रस्तावनामें लिखा है 'योगवासिष्ठ सिद्धावस्थाका ग्रन्थ है। इसके विचार, दर्शन, रहस्य, निरूपण-प्रणाली, भाषा, अलंकार—सब एक-से-एक आश्चर्यकर हैं।' लाला बैजनाथजीने इसके हिंदी-भाषान्तरकी भूमिकामें लिखा था कि 'वेदान्त-ग्रन्थोंमें योगवासिष्ठकी कोटिका कोई भी ग्रन्थ नहीं है'(भाग २ की भूमिका)। पिछले दिनों स्वामी भूमानन्दजी (जगद्गुरु आश्रम चटगाँव, बगाल), डा० भीखनलालजी आत्रेय, श्रीक्षितीशचन्द्रजी चक्रवर्ती आदि महान् विद्वानोंने इसकी बड़ी प्रशंसा की तथा इसपर पर्याप्त मनन-अनुसधान कर स्वतन्त्र पुस्तकें लिखी हैं।

तथापि आजके जगत्में कुछ ऐसे मतवादी भी हैं, जिनकी योगवासिष्ठके विरुद्ध स्वाभाविक उपेक्षा है। वे लोग कहते है कि योगवासिष्ठ १७वीं शतीकी रचना है। कई लोगोंका मत है कि यह स्वामी विद्यारण्यजीकी कृति है। कुछ भावुक वैष्णवोंका कथन है कि इसमें श्रीरामचन्द्रको शोकविकल दिखलाया गया है, शिष्यरूपमें दिखलाया गया है, इससे भक्तिकी महिमा नहीं है अतः सर्वथा उपेक्षणीय है। जे० एन० फर्क्यूहरका मत था कि 'योगवासिष्ठ ईसाकी १३ वीं तथा १४वीं शतीके बीचमें लिखा गया था।' (Religious Lectures of India pp 228) प्रोफेसर शिवप्रसाद भट्टाचार्यका मत है कि यह १० से १२ वीं शतीके मध्यकी कृति है (The Proceedings of the Madras Oriental Conference P. 545)। जर्मन विद्वान् डा० विंटर्नीजके मतानुसार 'यह शंकराचार्यके अनुयायियोंकी कृति है और ७से ८ शतीतककी रचना है‡।' डा० भीखनलाल आत्रेय इसे ईसाकी ६ ठी शतीकी रचना मानते हैं। उनका कथन है कि भर्तृहरिके वाक्यदीयमें तथा योगवासिष्ठमें कुछ समान पद हैं। इनमें योगवासिष्ठ ही पुराना हो सकता है। अतः योगवासिष्ठ कालिदासके बाद और भर्तृहरिके पहलेकी रचना है, इसलिये *लगभग ६ ठी शतीमें ही इसकी रचना युक्तिसंगत होगा।*§

शङ्काओंका समुचित समाधान

वस्तुतः ये सब शङ्काएँ आलस्य (योगवासिष्ठको तथा अन्य ग्रन्थोंको देखनेका कष्ट न करने) प्रमाद, मानसिक मतभेद तथा पाश्चात्त्योंके प्रभावके कारण ही हैं। ये सब कथन एक प्रकारसे अयुक्तिपूर्णमात्र भी हैं। जो लोग कहते हैं कि योगवासिष्ठ १७वीं शतीकी रचना है उन्हें देखना चाहिये कि १४वीं शतीके आस-पासकी आनन्दबोधेन्द्र सरस्वतीकी वासिष्ठरामायण तात्पर्य-प्रकाश नामकी टीका है¹। इसीके आसपासकी अद्वयारण्य, आत्मसुख, आनन्दवर्धन गङ्गाधरेन्द्र, माधव-सरस्वती तथा सदानन्द यतिकी टीकाएँ हैं। १६ वीं शतीके आचार्य श्रीमधुसूदन सरस्वतीने अपने ग्रन्थ सिद्धान्तबिन्दु, अद्वैतरत्न-

---

* (क) दुस्सहा राम संसारविषावेशविषूचिका।
योगगारुडमन्त्रेण पावनेन प्रशाम्यति ॥
(२ । १२ । १०)

(ख) जीवन्मुक्तत्वमस्मिंस्तु श्रुते समनुभूयते।
स्वयमेव यथा पीते नीरोगत्वं वरौषधे ॥
(३ । ८ । ७५)

† One of the greatest books and the most wonderful according to me ever written under the sun is 'Yoga Vasistha'
(In the Woods of God-Realization, Delhi edition, Vol III, p 293)

‡ As Shankara does not mention the work, it is probably written by one of his contemporaries. (Geschichte der Indischen Literature—Vol. III, p. 444)

§ Hence we may place it after Kalidas and before Bhartrihari, is somewhere in the 6 th century A D (Vasistha Darshanam, the Probable Date of Composition of Yoga Vasistha, p 18)

१. स्फुरत्स्फुरणनदी(१७९६) [illegible]
([illegible])

२. यह टीका १४ वीं शतीकी होनी चाहिये क्योंकि इसमें 'रामार्चनचन्द्रिका'का उल्लेख 'निर्णयसिन्धु' [illegible] है।

रक्षण, वेदान्तकल्पलतिका, संक्षेपशारीरक-व्याख्या तथा गीताकी 'गूढार्थदीपिका' व्याख्यामें—प्रायः सर्वत्र योगवासिष्ठके हजारों वचन उद्धृत किये हैं। केवल गीताके ६। ३२ तथा ३६ वें श्लोकोकी व्याख्यामें ही इन्होंने योगवासिष्ठके पचासों श्लोकोंको उद्धृत किया है।[3] इनसे भी पूर्व चौदहवीं शताब्दी-के सर्वोपरि विद्वान् वेदान्ताचार्य श्रीविद्यारण्य स्वामीने अपने 'जीवन्मुक्ति-विवेक' तथा 'पञ्चदशी'ग्रन्थोंमें योगवासिष्ठके श्लोकों-को बड़े आदरसे बार-बार उद्धृत किया है[4]। इनके गुरु श्रीशंकरानन्द भी 'ऋषिभिर्बहुधा गीतम्' (गीता १३।४) की व्याख्यामें लिखते हैं—'वासिष्ठविष्णुपुराणादिषु ऋषिभिर्वसिष्ठ-पराशरादिभिर्बहुप्रकारं प्रतिपादितम्'। यहाँ वसिष्ठनिर्मित 'योगवासिष्ठ' का सुस्पष्ट उल्लेख है। इनसे भी बहुत पहलेके १२ वी शतीके विद्वान् श्रीश्रीधर स्वामीने अपनी सुबोधिनी नामक गीता-व्याख्यामें योगवासिष्ठके श्लोकोंको कई बार उद्धृत किया है[6]। इससे भी पूर्व गौड़ अभिनन्द नामक काश्मीरी विद्वान्ने जिसका समय ९ वीं शतीका मध्यकाल माना जाता है, 'योगवासिष्ठसार' नामका ग्रन्थ लिखा था। इसमें उसने प्रायः ६ सहस्र श्लोकोंमें ही द्वात्रिंशत्सहस्रात्मक (३२००० वाले) योगवासिष्ठ ग्रन्थके सारभूत श्लोकोंका सग्रह किया है। इससे सिद्ध है कि योगवासिष्ठ इससे भी बहुत पहलेका ग्रन्थ है।

श्रीशंकराचार्य और योगवासिष्ठ

जो लोग कहते हैं कि शंकराचार्यके अनुयायियोंमेंसे ही किसी एकने 'योगवासिष्ठ' बना दिया, वह भी केवल उनका अविचारित निर्णयमात्र है। जिस प्रकार शंकरानन्द, नीलकण्ठ, श्रीधरस्वामी, मधुसूदन सरस्वती आदिने गीताके १३।४ श्लोकके 'ऋषिभिर्बहुधा गीतम्'की व्याख्यामें 'वसिष्ठादिभिः प्रतिपादितम्' लिखा है, उसी प्रकार शंकराचार्य भी लिखते हैं—ऋषिभिर्वसिष्ठादिभिर्बहुधा बहुप्रकारं गीतं कथितम्। मधुसूदन सरस्वती तथा भाष्योत्कर्षदीपिकाकारने इन्हीं शब्दोकी व्याख्या करते हुए लिखा है—'वसिष्ठाभिधे योगशास्त्रे'

इतना ही नहीं, 'श्वेताश्वतरोपनिषद्' (१।८) के भाष्यमें वे सुस्पष्ट शब्दोंमें लिखते हैं—

तथा च वासिष्ठे योगशास्त्रे प्रश्नपूर्वकं दर्शितम्—
यथाऽऽत्मा निर्गुणः शुद्धः सदानन्दोऽजरोऽमरः॥
संसृतिः कस्य तात स्यान्मोक्षो वा विद्यया विभो।

और लगातार दो श्लोकोंमें प्रश्न करके पुनः 'वसिष्ठः' लिखकर 'तस्यैव नित्यशुद्धस्य सदानन्दमयात्मनः' आदि योगवासिष्ठके दो श्लोकोंको उत्तररूपमें लिखते हैं। इसी प्रकार वे 'सनत्सुजातीयभाष्य' (१।१५) में भी लिखते हैं—तथा चाह भगवान् वसिष्ठः—

३ (क) अत एवाह वसिष्ठ—'द्वौ क्रमौ चित्तनाशस्य योगो ज्ञान च राघव।' (६। २३ पर मधुसूदनी)

(ख) वासिष्ठरामायणादिषु तदेव तत्त्वज्ञान मनोनाशो वासना-क्षयश्चेति त्रयमभ्यसनीयम्। तदुक्तं वाशिष्ठे—

तच्चिन्तनं तत्कथनमन्योन्य तत्प्रबोधनम्।
एतदेकपरत्वं च ब्रह्माभ्यासं विदुर्बुधाः॥
(गीता ६। ३२ पर मधुसूदन)

४. परास्य शक्तिर्विविधा क्रियाज्ञानफलात्मिका।

(क) इति वेदवचः प्राह वसिष्ठश्च तथाब्रवीत्।
सर्वशक्तिपर ब्रह्म नित्यमापूर्णमद्वयम्॥
ययोल्लसति शक्त्यासौ प्रकाशमधिगच्छति।
चिच्छक्तिर्ब्रह्मणो राम शरीरेषूपलभ्यते॥
स आत्मा सर्वगो राम नित्योदितवपुर्महान्।
यन्मनाङ् मननीं शक्तिं धत्ते तन्मन उच्यते॥

इत्यादि (पञ्चदशी १३ १४।से २८वें श्लोकतक सब योगवासिष्ठके ही श्लोक हैं)

'वसिष्ठश्च तथाब्रवीत्'की व्याख्यामे रामकृष्णपण्डित लिखते हैं—'वासिष्ठाभिधे ग्रन्थे।'

(ख) वसिष्ठः—अतएव हि राम त्व श्रेयः प्राप्नोषि शाश्वतम्।
स्वप्रयत्नोपनीतेन पौरुषेणैव नान्यथा॥
(जीवन्मुक्तिविवेक पृष्ठ ३५)

यह श्लोक योगवासिष्ठ, मुमुक्षु-व्यवहारप्रकरणका है।

सच्ची बात तो यह है कि 'जीवन्मुक्तिविवेक' योगवासिष्ठपर ही आधारित हे। इसमें योगवासिष्ठको वाल्मीकिलिखित भी बतलाया है—"वासनाभेदो वाल्मीकिना दर्शितः वासिष्ठे—'वासना द्विविधा प्रोक्ता शुद्धा च मलिना तथा' इत्यादि" ये सब योगवासिष्ठके ही श्लोक हैं। इसमें प्राय· आधे ग्रन्थमें योगवासिष्ठके श्लोक ही हैं।

५ नमः श्रीशंकरानन्दगुरुपादाम्बुजन्मने। (पञ्चदशी १।१)

६ (क) तदुक्तं वसिष्ठेन—

प्राणे गते यथा देहः सुखदुःखे न विन्दति।
तथा चेत् प्राणयुक्तोऽपि स कैवल्याश्रमे वसेत्॥
(५। २३ गीता-व्याख्या)

(ख) वसिष्ठेन चोक्तम्—'न कर्माणि त्यजेद् योगी कर्म-भिस्त्यज्यते ह्यसौ।' (गी० १८। २ की व्याख्या)

(ग) ऋषिभिर्वसिष्ठादिभिर्योगशास्त्रेषु निरूपितम्'
(गीता १३। ४ की व्याख्या)

चतुर्वेदोऽपि यो विप्रः सूक्ष्मं ब्रह्म न विन्दति ।
वेदभारभराक्रान्तः स वै ब्राह्मणगर्दभः ॥

वे पुनः इसी ग्रन्थके इसी अध्यायके ३१वें श्लोकके भाष्यमें लिखते हैं—तथा चाह भगवान् वसिष्ठः—

यत्र सन्तं न चासन्तं नाश्रुतं न बहुश्रुतम् ।
न सुवृत्तं न दुर्वृत्तं वेद कश्चित् स ब्राह्मणः ॥

यह भी नहीं कहा जा सकता कि ये ग्रन्थ शंकराचार्यकृत नहीं हैं, क्योंकि 'शंकरदिग्विजयकार' ने भी लिखा है—सनत्सुजातीयमसत्सु दूरं ततो नृसिंहस्य च तापनीयम् ।

स्वामी भूमानन्दजीने **Influence of the Yogavasistha on Shankaracharya** नामकी पुस्तिकामें तुलनात्मक अध्ययनद्वारा यह भी दिखलाया है कि शंकराचार्यकी विवेकचूडामणि, सारतत्त्वोपदेश, लघुवाक्यवृत्ति, प्रबोधानुभूति, प्रबोधसुधाकर आदि कृतियोंपर योगवासिष्ठके किन-किन श्लोकोंकी छाप या प्रभाव है । उदाहरणार्थ—'प्राणस्पन्दनिरोधात् सत्सङ्गाद् वासनात्यागात् । हरिचरणभक्तियोगान्मनः स्ववेगं जहाति शनैः ॥ इस प्रबोधसुधाकर (७७) के श्लोक पर 'अध्यात्मविद्याधिगमः साधुसंगम एव च । वासनासम्परित्यागः प्राणस्पन्दनिरोधनम् ॥ एतास्ता युक्तयः पुष्टाः सन्ति चित्तजये किल ।' योगवासिष्ठ (५ । ९२ । ३५) इस श्लोककी छाप है । इससे सिद्ध है कि योगवासिष्ठ शंकराचार्यके समय इस समयसे कहीं अधिक निर्भ्रान्त तथा समादरणीय ग्रन्थ था । यह स्मरणार्ह है कि शंकराचार्यका समय आजसे २३ सौ वर्ष पूर्व है । देखिये 'कल्याण' वर्ष ११, अङ्क ८; 'सिद्धान्त' ७ । २७ ।

श्रीरामका तिरस्कार नहीं

कुछ वैष्णवजनोंको यह आपत्ति है कि श्रीरामका इसमें शोकाकुल होना—शोकसे पीला पडना बतलाया गया है, परमात्मा शोकयुक्त या शिष्य नहीं बनता । इसके उत्तरमें नम्र निवेदन है कि श्रीरामका शोक जैसा वाल्मीकि आदि रामायणोंमें सीताहरण या लक्ष्मणमूर्च्छा आदिके बाद है, वैसी तो योगवासिष्ठमें कोई बात भी नहीं है । योगवासिष्ठमें राम संसारसे खिन्न होकर खाना-पीना छोड़ रहे हैं, एकान्तवास करते हैं । यह भोगोंसे वैराग्य उत्तम अधिकारीका लक्षण है । भोजन छोडनेसे उनका पीला हो जाना स्वाभाविक है । बाल्यावस्थामें विद्याग्रहणार्थ उनके द्वारा भगवान् वसिष्ठका शिष्यत्व स्वीकार करना सभी रामायणोंमें वर्णित है, उसी बाल्यावस्थामें विश्वामित्रके यागसरक्षणके पूर्व ही इनका योगवासिष्ठका ग्रहण, तदुचित अधिकारसम्पादन, सम्पूर्ण विश्वको एकदम चकित कर देनेवाले प्रश्न-भाषण योगवासिष्ठद्वारा सर्वापेक्षया रामके माहात्म्याधिक्य के प्रतिपादक तथा साधक ही हैं, बाधक नहीं ।

योगवासिष्ठमें श्रीरामका महाविष्णुत्व-निरूपण

योगवासिष्ठमें महर्षि वाल्मीकिने बार-बार श्रीरामको महा-विष्णु बतलाया है । कुछ थोडे प्रसङ्ग यहाँ उदाहरणस्वरूप उपस्थित किये जा रहे हैं—

चिदानन्दस्वरूपे हि रामे चैतन्यविग्रहे ।
(१ । १ । ५६)

शापव्याजवशादेव राजवेशधरो हरिः ।
(१ । १ । ५५)

वृन्दया शापितो विष्णुस्तेन मानुषतां गतः ।
(१ । १ । ६०)

अहं वेद्मि महात्मानं रामं राजीवलोचनम् ।
वसिष्ठश्च महातेजा ये चान्ये दीर्घदर्शिनः ॥
(१ । ७ । २२)

बालक रामके ज्ञानपूर्ण भाषण सुनकर सभी मुनि अनेकानेक लोकोंसे दौड पडते हैं और आश्चर्यचकित हो कर कहने लग जाते हैं—

न रामेण समोऽस्तीह दृष्टो लोकेषु कश्चन ।
विवेकवानुदारात्मा न भावी चेति नो मतिः ॥
(योग० १ । ३३ । ४७)

अर्थात् तीनोलोकोंमें आजतक श्रीरामके समान ज्ञानी एवं उदार व्यक्ति न तो कोई हुआ और न भविष्यमें होनेवाला है, ऐसी हमलोगोंकी बुद्धि कहती है—हमारा निश्चय है ।

इतना ही नहीं, श्रीरामके अमृतमय प्रवचनको सुनकर घोडे घास खाना छोड देते हैं, रानियाँ गवाक्षसे देखती हुई चित्रलिखित-सी खडी रह जाती हैं, देवताओंद्वारा पुष्पवृष्टि होती रहती है, सभी मन्त्री, सामन्त, नागरिक, राजकुमार एकटक देखते रह जाते हैं । पिंजडेके पक्षी, महलोंके क्रीडामृग भी कान खडे करके ध्यानसे सुनते रह जाते हैं । सिद्धमुनियोंकी परम्परा नभोमण्डलसे सुदूरसे दौड पड़ती है—

सामन्तैः राजपुत्रैश्च ब्राह्मणैर्ब्रह्मवादिभिः ।
तथा भृत्यैरमात्यैश्च पञ्जरस्थैश्च पक्षिभिः ॥
क्रीडामृगैर्गतस्पन्दैस्तुरङ्गैस्त्यक्तचर्वणैः ।
कौसल्याप्रमुखैश्चैव निर्वातायनस्थितैः ॥
संशान्तभूषणारावैरस्पन्दैर्वनितागणैः ।

सिद्धैर्नभश्चरैश्चैव तथा गन्धर्वकिन्नरैः ।
रामस्य ता विचित्रार्था महोदारा गिरः श्रुताः ॥
(१ । ३२ । ७—११)

श्रीरामके शिष्यत्वका भी उत्तर है । योग्य अधिकारी श्रीरामसे दूसरा कौन मिलता ? अतः स्वयं प्रश्न करके वसिष्ठके हृदयमें प्रविष्ट होकर उन्होंने यह ज्ञान प्रकट किया । देखिये वासिष्ठमहारामायण-तात्पर्यटीकाका उपोद्घात, श्लोक ११—

आविश्यान्तर्वसिष्ठं वहिरपि कलयन् शिष्यभावं वितेने ।
यः संवादेन शास्त्रामृतजलधिममु रामचन्द्रं प्रपद्ये ॥

योगवासिष्ठके अन्तमें भी 'नारायण' कहकर श्रीरामको नमस्कार किया गया है ।

योगवासिष्ठमें भक्ति

योगवासिष्ठमें भक्तिकी वात भी वहुत है । यों तो उपरिनिर्दिष्ट प्रकरण भी, जिसकी छाया सम्भवतः भागवतकारके वेणुगीतपर पड़ती है और जिसमें कहा गया है कि 'श्रीकृष्णके वेणुगीतको श्रवणकर वछड़े दूध पीना भूल जाते हैं, नदियोंका वेग भग्न हो जाता है, गौएँ कवल नहीं लेतीं, कम भक्ति-रससे ओतप्रोत नहीं है । तथापि इस तरहके अन्य भी कई प्रसङ्ग योगवासिष्ठमें हैं । उपशम-प्रकरणके ३३वें अध्यायकी प्रह्लादकृत विष्णुस्तुति संस्कृतसाहित्यकी अद्भुत निधि है । वह सब स्तुतियोंको एक वार मात कर देती है । श्रीवसिष्ठकी भगवान् शंकरसे मिलनेके वादकी प्रार्थना भी अत्यद्भुत भक्ति-रससे परिपूर्ण है । कई स्थानोंपर भगवत्स्मरणकी वड़ी महिमा है । ध्यानकी प्रशंसा तो सर्वत्र है ही ।

भक्तशिरोमणि तुलसीदासजीको भी योगवासिष्ठ मान्य था । उनके उत्तरकाण्डके भुशुण्डिचरित्रपर भुशुण्डोपाख्यान (योग-वासिष्ठ-निर्वाणप्रकरण पूर्वार्द्ध १४ से २८ अध्याय) की छाया है । भुशुण्डके दीर्घजीवित्वका क्रम, कारणादि यहाँ वड़े विस्तारसे निरूपित है । विनयपत्रिकाके २०६ वें पदमें वे लिखते हैं—

जो मन भज्यो चहै हरि सुरतरु ।
सम, संतोष, विचार, विमल अति, सतसंगति, ये चारि दृढकरि धरु ।

इसपर योगवासिष्ठके 'शमो विचारः संतोषश्चतुर्थः साधु-संगमः ।' (२ । ११ । ६०) 'तथा संतोषः साधुसङ्गश्च विचारोऽथ शमस्तथा ।' (२ । १६ । १८) आदि मुमुक्षु-व्यवहार-प्रकरणके १२ से १६ वें अध्यायतकके उपदेशोंका ही प्रभाव है । 'वेद पुरान वसिष्ट वखानहिं । सुनहिं राम जद्यपि सब जानहिं ॥' आदिसे भी इसका समर्थन-सा होता है ।

योगवासिष्ठ किसकी रचना ?

यों योगवासिष्ठको वाल्मीकिकी रचना वतलाया गया है । कई लोग इसमें 'उवाच' आदि अलंकारोंकी भरमार देखकर अन्यकी कृति समझते हैं । पर जो हो, यह तो उन्हें भी मानना पड़ेगा कि पदमाधुर्य, भावगाम्भीर्य, निरूपणशैली, तत्त्वप्रदर्शन, सूक्ष्मेक्षिका, प्रखरविचार, सर्वत्र नवीनता तथा अमृतोपम पवित्रतम साधु उपदेशोंकी शृङ्खला देखते हुए यह वाल्मीकि-रामायण या विश्वके किसी भी ग्रन्थसे निम्नकोटिका नहीं है । अतः इसका रचयिता जो भी हो, साक्षात् ईश्वर है या ईश्वरप्राप्त है । ग्रन्थ सर्वथा निर्दोष है । कई प्रकरण तो वाल्मीकिसे मिलते भी हैं । विश्वामित्र-दशरथ-संवादमें प्रायः वाल्मीकिके ही श्लोक हैं । जो अधिक हैं, वे रम्यतर हैं । 'उवाच' आदि लिखना—भिन्न शैली अपनाना भी एक लेखकद्वारा सम्भव है ही । अतः वाल्मीकिरचित मानना युक्तिसगत ही है ।

उपसंहार

ध्यानसे देखा जाय तो भागवत वाल्मीकिरामायण तथा अन्य पुराणोंसे योगवासिष्ठका वर्णन अधिक ही मिलता है । वस्तुतः भाषा, छन्दरचना तथा विचार-प्रवणताकी दृष्टिसे योग-वासिष्ठ सर्वोत्तम ग्रन्थ प्रतीत होता है । इसलिये श्रेष्ठ साधक इसके कालनिर्णयके चक्करमें न पडकर इससे वास्तविक लाभ उठानेके प्रयत्नमें लग जाते हैं । यही होना भी चाहिये । किंतु साधारण व्यक्ति इससे वञ्चित न रह जायँ तथा व्यापक भ्रान्त धारणा शान्त हो जाय, इसीलिये यह यत्किंचित् प्रयास किया गया है ।

वस्तुतः योगवासिष्ठ भारतीय ज्ञानरविकी एक अनुपम रश्मि है । इसमें संसार, उसके तरनेके उपाय, दैव, पुरुषार्थ, तत्त्वज्ञान एवं उसके साधनोंके प्रत्येक अङ्गपर इतना क्रम-क्रमसे विचार किया गया है कि देखते हुए आश्चर्यचकित रह जाना पड़ता है । कल्याणकामी मनुष्योंको इससे अवश्य लाभ उठाना चाहिये यही प्रार्थना है ।

योगवासिष्ठकी आजके आत्म-शान्ति, विश्व-शान्तिके इच्छुक विश्वको चुनौती तथा इस क्षणका ज्ञान-बन्धुत्व एवं ज्ञानाभास

(लेखक—पं० श्रीरामनिवासजी शर्मा)

शास्त्र कहते हैं ज्ञानके विना मुक्ति नहीं।[1] आधुनिक विद्वान् भी प्रकारान्तरसे यही कहते हैं—

Knowledge is power.

परंतु ज्ञान और ज्ञान-शक्तिमें अन्तर है। ज्ञानसे शक्ति भी प्राप्त होती है जब कि मनुष्य ज्ञानार्थमें ढक जाता है। क्रिया-हीन ज्ञान तो शक्तिहीन ही होता है। यह भी न भुलाना चाहिये कि ज्ञानसे शक्ति और मुक्ति तभी प्राप्त होती है, जब कि वह अध्यात्म हो। आजका ज्ञान तो—

१—भौतिक है

२—तर्कमात्र है

३—शिल्पवत् है

४—अवास्तविक है

५—केवल प्रवृत्तिप्राण है

६—यश और जीविकाका साधन है

आजका ऐसा सारहीन अनात्म-ज्ञान योगवासिष्ठके मतसे ज्ञानाभास है और ऐसे ज्ञानका धनी व्यक्ति ज्ञानबन्धु है तथा ज्ञानशिल्पी। वह वास्तविक ज्ञानी नहीं, उससे तो अज्ञानी ही अच्छा है—

आत्मज्ञानं विदुर्ज्ञानं ज्ञानान्यन्यानि यानि तु।
तानि ज्ञानावभासानि सारस्यानवबोधनात्॥
(यो० वा० ६ । २१ । ७)

अज्ञातारं वरं मन्ये न पुनर्ज्ञानबन्धुताम्॥
व्याचष्टे यः पठति च शास्त्रभोगाय शिल्पिवत्॥
(यो० वा० ६ । २१ । १–३)

हम देखते है आज भारत भी ज्ञान-बन्धुता और ज्ञाना-भासका शिकार हो रहा है। राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति दोनोंके ही मतसे यह चरित्रहीन होता जा रहा है। भारतेतर देशोंकी दशा तो इससे भी बुरी है। वे तो इस दिशाके गुरु ही हैं, अतः उनका जीवन एकमात्र प्रवृत्ति-प्रधान है एवं समधिक भोगप्रधान।

योगवासिष्ठकारके मतसे तो ज्ञानी वही है जो जानने योग्य वस्तुको जानकर वासनामुक्त तथा कर्मतत्पर होता है—

ज्ञात्वा सम्यगवुज्ज्ञानं दृश्यते येन कर्मसु।
निर्वासनात्मकं ज्ञस्य स ज्ञानीत्यभिधीयते॥
(यो० वा० ६ । २२ । २)

योगवासिष्ठकार यह भी कहते हैं कि जिसकी इच्छाएँ शान्त हो गयी हों एवं जिसकी शीतलता कृत्रिम न होकर वास्तविक हो तथा जिसका पुनर्जन्मका खटका मिट गया हो, वही ज्ञानी है, अन्यथा खाना-पहनना और लेना-देना आदि तो शिल्पी-की जीविकामात्र है—

अन्तःशीतलतेहासु प्राज्ञैर्यस्यावलोक्यते।
अकृत्रिमैकशान्तस्य स ज्ञानीत्यभिधीयते॥
(यो० वा० ६ । २२ । ३)

अपुनर्जन्मने यः स्याद्बोधः स ज्ञानशब्दभाक्।
वसनाशनदा शेष व्यवस्था शिल्पजीविका॥
(यो० वा० ६ । २२ । ४)

योगवासिष्ठकारका यह भी मत है कि जो मनुष्य कामना तथा संकल्प-विकल्पसे मुक्त होकर शान्तचित्तसे अवसरानुसार कार्य करता है वही पण्डित है—

प्रवाहपतिते कार्ये कामसंकल्पवर्जितः।
तिष्ठत्याकाशहृदयो यः स पण्डित उच्यते॥
(यो० वा० ६ । २२ । ५)

योगवासिष्ठके मतसे सच्चा आर्यपुरुष वही है जो कर्तव्यका पालन करता है और अकर्तव्यसे बचता है एवं प्रकृत आचारविचारमें संलग्न रहता है—

कर्तव्यमाचरन् काममकर्तव्यमनाचरन्।
तिष्ठति प्राकृताचारो यः स आर्य इति स्मृत॥
(यो० वा० ६ । १२६ । ५४)

योगवासिष्ठकारकी आर्यपुरुषलक्षणविषयक यह भी समुद्घोषणा है कि जो व्यक्ति शास्त्र-सदाचार एवं परिस्थिति-सम्मत तथा मनःपूत व्यवहार करता है वही आर्य है—

यथाचारं यथाशास्त्रं यथाचित्तं यथास्थितम्।
व्यवहारमुपादत्ते य. स आर्य इति स्मृतः॥
(यो० वा० ६ । १२६ । ५५)

किस विज्ञसे यह बात छिपी हुई है कि आज मानव आर्योचित योगवासिष्ठ-अभिमत व्यक्तित्वसे सर्वथा दूर होता जा रहा है अपितु वह मानवोचित व्यक्तित्वसे न पहचाना जाकर विद्वान्, महात्मा, बाबू, डाक्टर, वकील आदि विशेषणोंसे पहचाना और पुकारा जाता है। पाश्चात्त्य देशोंमें भी वल्कलके इस वाक्यका सम्मान दृष्टिगोचर नहीं होता—

---

१. ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः।

Man it does not mean this or that but humanity.

ऐसा क्यों हो रहा है। इसका एकमात्र कारण यही है कि हमारे विश्वविद्यालयोंका आमूल-चूल परिवर्तन नहीं हो पाता। सच्ची सुधार-योजनाओंपर भी अमल नहीं किया जाता और न घर और बाहर बालकोंकी शिक्षा-दीक्षापर ही समुचित ध्यान दिया जाता है। ऐसी दशामें तथाकथित आर्य-व्यक्तित्व बालकोंमें कैसे उत्पन्न हो सकता है? इसी सत्यपर प्रकारान्तरसे राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसादजीके ये शब्द पूर्णतः चरितार्थ होते हैं—

हम अपने सामने कितने भी महान् व उच्च आदर्शोंको लेकर जिस-किसी तरहकी राज-व्यवस्था क्यों न स्थापित कर लें, हमारी आर्थिक व सामाजिक विचारधारा कितनी भी समान व उदार क्यों न हो, पर जबतक हमारी अगली पीढ़ीका शारीरिक एवं मानसिक सौष्ठव व गठन शिशु-जीवनमें ही ठीक न होगा, तबतक देशमें हम सुख व शान्ति स्थापित करनेमें सफल नहीं हो सकते।

यहाँ योगवासिष्ठ-सम्मत यह बात भी विचारणीय है कि ज्ञान-विकास और आत्म-ज्ञानप्राप्ति न केवल शास्त्र और गुरु-वचन-साध्य ही है प्रत्युत स्वानुभवका भी विषय है—

शास्त्रार्थैं बुध्यते नात्मा गुरुवचनतो न च।
बुध्यते स्वयमेवैष स्वबोधवशतस्ततः॥
(यो० वा०)

इस समय हम देखते हैं हमारे विद्यार्थी आत्मनिर्भर नहीं हो पाते। वे केवल पुस्तक-कीट और परप्रत्ययनेय मति ही बने रहते हैं। वे यह भी नहीं समझते कि पेड़ भीतरसे बढ़ता है, माली और उपकरण तो उसके निमित्तमात्र होते हैं। वे प्रायः इस वैदिक सत्यसे भी अनभिज्ञ-से ही रहते हैं—

'आत्मनाऽऽत्मानमुद्धरेत्।'

एतद्विषयक योगवासिष्ठकी तो यह सम्मति है कि आत्म-शान्ति और विश्व-शान्ति आत्म-विकास और आत्म-ज्ञानसे ही प्राप्त होती है, दूसरे किसी उपायसे नहीं। अतएव सर्वदुःख-हर्ता आत्मावलोकनमें ही भूति-विभूतिके इच्छुक व्यक्ति लगा रहे—

करोतु भुवने राज्यं विशत्वम्भोदमम्बुवत्।
आत्मलाभादृते जन्तुर्विश्रान्तिमधिगच्छति॥
(यो० वा० ५। ५। २४)

आत्मावलोकने यत्नः कर्तव्यो भूतिमिच्छता।
सर्वदुःखशिरश्छेद आत्मालोकेन जायते॥
(यो० वा० ५। ७५। ४६)

योगवासिष्ठसम्मत आत्मावलोकनसे न केवल आत्म-शान्ति प्राप्त होती है अपितु योगवासिष्ठके बार-बारके पाठ और अवलोकनसे विश्वबन्धुता—प्राणस्पृहणीय नागरिकता भी प्राप्त होती है, जो आजकी अत्यधिक वाञ्छनीय वस्तु है—

एतच्छास्त्रवनाभ्यासात् पौनःपुन्येन वीक्षणात्।
परा नागरतोदेति महत्त्वगुणशालिनी॥
(यो० वा० २। १८। ३६, ८)

योगवासिष्ठकारके मतसे योगवासिष्ठ-ग्रन्थावलोकनका एकान्त फल यह भी है—

बोधस्यापि परं बोधं बुद्धिरेति न संशयः॥
जीवन्मुक्तत्वमस्मिंस्तु श्रुतिः समनुभूयते[1]॥
(यो० वा० ३। ८। १३। १५)

भगवान् वसिष्ठकी जय

(लेखक—पं० श्रीसूरजचंदजी सत्यप्रेमी (डाँगीजी))

योगवासिष्ठके प्रवक्ता भगवान् वसिष्ठका परिचय कराना अत्यन्त कठिन है, फिर भी उनके पारमार्थिक स्वरूपका मनन करना हो तो उनका भगवान्के अवतारोंके साथ क्या सम्बन्ध है? उसे स्मरण किया जाना अनिवार्य आवश्यक है।

मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् रामके गुरु, भगवान् परशुरामके पिता महर्षि जमदग्नि और भगवान् दत्तात्रेयके मौसा, परम सिद्ध भगवान् कपिल और परमहंस नवयोगीश्वर तथा जड-भरतके पिता भगवान् ऋषभदेवके दादा राजर्षि आग्नीध्रके बहनोई, भगवान् मनुके पुत्र आद्य नरेन्द्र प्रियव्रतकी बहन देवी देवहूतिके जामाता भगवान् वसिष्ठकी सदा काल जय हो, विजय हो, जिन्होंने संसार-चक्रको छेदन करनेके लिये पुण्य-कर्मका चक्र बताया और पुण्यकर्मके चक्रको भंग करनेके लिये धर्मचक्र चलाया और फिर गुरुचक्रका प्रवर्तन करके सिद्धचक्रमें प्रवेश करा दिया—अजातवादके परम रहस्यमय सिद्धान्तके आद्य प्रणेता भगवान् वसिष्ठ ही हैं।

इस अद्वैत, तुरीय और अज तत्त्वसे भी परे तुरीयातीत, द्वैताद्वैतातीत और अजाव्ययधर्मातीत परमतत्त्वके प्रणेता भगवान् वसिष्ठ सर्वत्र सर्वथा, सर्वदा सम्पूर्ण आराध्य बनें।

१. इस ग्रन्थके श्रवणसे परम ज्ञान प्राप्त होता है, फिर जीवन्मुक्तिका अनुभव होने लगता है।

योगवासिष्ठका साध्य-साधन

योगवासिष्ठ महारामायणका प्रारम्भ होता है—देवराज इन्द्रके द्वारा महर्षि वाल्मीकिके पास राजा अरिष्टनेमिके भेजे जानेके प्रसङ्गसे। अरिष्टनेमि महर्षि वाल्मीकिसे मोक्षका साधन पूछते हैं। उसके उत्तरमें वाल्मीकिजी महाराज अपने शिष्य भरद्वाजके साथ हुए संवादका वर्णन करते हुए भगवान् रामके प्राकट्यकी वात सुनाते हैं। तदनन्तर महर्षि विश्वामित्रके दशरथ-दरवारमें आकर यज्ञरक्षार्थ रामको माँगनेका प्रसङ्ग सुनाकर रामके वैराग्य तथा राम-वसिष्ठ-सवादके रूपमें छः प्रकरणोंमें 'योगवासिष्ठ' नामक विशाल ग्रन्थका श्रवण कराते हैं।

योगवासिष्ठ अजातवाद या केवल ब्रह्मवादका ग्रन्थ है। इसके सिद्धान्तानुसार एकमात्र चेतनतत्त्व परब्रह्मके अतिरिक्त कोई अन्य सत्ता ही नहीं है। जैसे समुद्रमें अनन्त तरङ्गें उठती-मिटती रहती हैं, वे समुद्रसे भिन्न नहीं हैं, इसी प्रकार नित्य समरूप अनादि अनन्त सच्चिदानन्दघन परमात्म-चैतन्यरूप समुद्रमें नाना प्रकारके अनन्त ब्रह्माण्डोंकी उत्पत्ति, स्थिति और विनाशकी लीला-तरङ्गें दीखती रहती हैं। चित्त या अहंकार—जो वास्तवमें चेतन-ब्रह्मसे अभिन्न तथा ब्रह्मरूप ही है—इस दृश्य-प्रपञ्चका—सृष्टि स्थिति-विनाशका कारण है। अहंकारका नाश होते ही, जो अहंकारकी सत्ता न माननेसे ही नाश हो जाता है, केवल एक ब्रह्म-चैतन्य ही रह जाता है। इसी एक तत्त्वका विभिन्न आख्यानों, इतिहासों, कथाओंके द्वारा इस विशाल ग्रन्थमें प्रतिपादन किया गया है। यह ग्रन्थ पुनरुक्तिपूर्ण है। एक ही सत्य तत्त्वको दृढता-पूर्वक हृदयमें जमा देनेके लिये, एक ही सत्य तत्त्वकी अनुभूति या प्राप्ति करा देनेके लिये वार-वार विभिन्न रूपोंसे एक-सी ही युक्तियों तथा उपमाओंका उल्लेख किया गया है।

सृष्टि न कभी हुई, न है—एकमात्र ब्रह्म ही है। इस प्रकार सृष्टिका अभाव प्रतिपादन करनेपर भी इस ग्रन्थमें कहीं भी यथेच्छाचार, शास्त्रनिषिद्ध व्यवहार, रागद्वेष-कामक्रोधादि-जनित अनाचार, भ्रष्टाचार, दुष्ट-सङ्ग आदिका समर्थन नहीं किया गया है, वरं वड़ी कड़ाईके साथ शास्त्राज्ञापालन-रूप सदाचारपरायणता, एवं त्यागमय पुण्यमय जीवनकी आवश्यकता वतायी गयी है। राग, ममता, कामना, तृष्णा, इच्छा और इनके मूल अहंकारके त्यागकी महत्ता स्थान-स्थानपर वतलायी गयी है। इन्द्रियभोगोंमें फँसे हुए मनुष्योंकी घोर दुर्दशाका वर्णन करते हुए वैराग्यकी अनन्त प्रयोजनीयताका प्रतिपादन किया गया है। साधक पुरुषको अहंभावनारूप ग्रन्थिका यथार्थ ब्रह्मज्ञानके द्वारा भेदन करके सच्चा ज्ञानी वननेका उपदेश दिया गया है, केवल ज्ञानका कथनमात्र करनेवाले 'ज्ञानवन्धु' (नकली ज्ञानी) वननेका नहीं। महर्षि वसिष्ठने यहाँतक कहा है कि 'वे ज्ञानवन्धु (नकली ज्ञानी) से तो अज्ञानीको अच्छा समझते हैं (क्योंकि वह वेचारे अपनेको तथा दूसरोंको धोखा तो नहीं देते।) महर्षि कहते हैं—

> ज्ञानिनैव सदा भाव्यं राम न ज्ञानवन्धुना।
> अज्ञातारं वरं मन्ये न पुनर्ज्ञानवन्धुताम्॥
> (निर्वाण-प्रकरण उ० २१।१)

फिर भगवान् श्रीरामके पूछनेपर नकली ज्ञानी (ज्ञान-वन्धु) के लक्षण वतलाते हैं।

> व्याचष्टे यः पठति च शास्त्रं भोगाय शिल्पिवत्।
> यतते न त्वनुष्ठाने ज्ञानवन्धुः स उच्यते॥
> कर्मस्पन्देषु नो बोधः फलितो यस्य दृश्यते।
> बोधशिल्पोपजीवित्वाज्ज्ञानवन्धुः स उच्यते॥
> वसनाशनमात्रेण तुष्टाः शास्त्रफलानि ये।
> जानन्ति ज्ञानवन्धूंस्तान्विद्याच्छास्त्रार्थशिल्पिनः॥
> (निर्वाण-प्रकरण उ० २१।३—५)

'जैसे शिल्पी जीविकाके लिये ही शिल्पकला सीखता है, वैसे ही जो मनुष्य केवल भोगप्राप्तिके लिये ही शास्त्रको पढ़ता और उसकी व्याख्या करता है, स्वयं शास्त्रके अनुसार आचरणके लिये प्रयत्न नहीं करता, वह ज्ञानवन्धु कहलाता है। शास्त्राध्ययनसे जिसको शाब्दिक बोध हो गया है परंतु उस वोधका फल, जो विनाशशील भोगों—व्यवहारोंमें वैराग्य होना चाहिये, सो नहीं हुआ तो उसका वह शास्त्रज्ञान शिल्पमात्र है—तत्त्वज्ञानकी वातें वनाकर दूसरोंको ठगनेके लिये चातुर्यपूर्ण कलामात्र है। उस कलासे केवल जीविका चलानेवाला होनेके कारण वह मनुष्य ज्ञानवन्धु कहलाता है। जो केवल भोजन-वस्त्रमें ही संतुष्ट रहकर भोजनादिकी प्राप्तिको ही शास्त्राध्ययनका फल समझते हैं, वे शास्त्रोंके अर्थके एक

शिल्पकला ही मानते हैं । ऐसे लोगोंको ज्ञानबन्धु जानना चाहिये ।' फिर कहते हैं—

अपुनर्जन्मने यः स्याद् बोधः स ज्ञानशब्दभाक् ।
वसनाशनदा शेषा व्यवस्था शिल्पजीविका ॥
(निर्वाण-प्रकरण उ० २२ । ४)

'जिससे मोक्षकी प्राप्ति होती है, पुनर्जन्मकी नहीं, उसीका नाम ज्ञान है । उसके अतिरिक्त दूसरा जो शब्दज्ञानका चातुर्य है, वह तो रोटी-कपड़ा प्राप्त करनेकी कलामात्र है । उसे केवल भोजन-वस्त्र जुटानेवाली व्यवस्था समझना चाहिये ।'

इस परम ज्ञानकी प्राप्तिके लिये शम (मनकी स्ववशता), दम (इन्द्रियनिग्रह), शास्त्रीय सदाचारका सेवन, दैवी सम्पत्तिके गुणोंका अर्जन तथा भोग-वैराग्यपूर्वक ज्ञान-प्राप्तिकी इच्छासे सद्गुरुके शरणमें जाना आवश्यक है । सद्गुरु वही है, जो शिष्यके अज्ञानान्धकारको अपने निर्मल स्वप्रकाश ज्ञानकी विमल ज्योतिसे हर ले और शिष्य वही है, जो विनय तथा सेवापरायण होकर ज्ञानी गुरुसे प्रश्न करे और उनके आज्ञानुसार अपना जीवन निर्माण करे । महर्षि वसिष्ठ कहते हैं—

अतत्त्वज्ञमनादेयवचनं वाग्विदांवर ।
यः पृच्छति नरं तस्मान्नास्ति मूढतरोऽपरः ॥
प्रामाणिकस्य तज्ज्ञस्य वक्तुः पृष्टस्य यत्नतः ।
नानुतिष्ठति यो वाक्यं नान्यस्तस्मान्नराधमः ॥
(मुमुक्षु-प्रकरण ११ । ४५-४६)

"वाग्वेत्ताओंमें श्रेष्ठ राम ! जो तत्त्वका ज्ञान नहीं रखता, उसके वचन मानने योग्य नहीं हैं । ऐसे तत्त्वज्ञानहीन मनुष्यसे जो तत्त्वविषयक प्रश्न करता है, उससे बढ़कर दूसरा कोई 'मूर्ख' नहीं है ।" (साथ ही, जो मनुष्य किसी सच्चे ज्ञानी महात्मासे) "पूछकर भी उस प्रमाणकुशल तथा तत्त्वज्ञानी वक्ताके उपदेशके अनुसार यत्नपूर्वक आचरण नहीं करता, उससे बढ़कर 'नराधम' भी दूसरा कोई नहीं है ।"

अतएव न तो बिना जाने-समझे किसीसे पूछना चाहिये तथा न तत्त्वज्ञ महात्माका उपदेश प्राप्त करके उसकी अवहेलना ही करनी चाहिये । साथ ही तत्त्वज्ञ पुरुषको भी चाहिये कि वे यथार्थ अधिकारीको ही तत्त्वका उपदेश दें । महर्षि कहते हैं—

पूर्वापरसमाधानक्षमबुद्धावनिन्दिते ।
पृष्टं प्राज्ञेन वक्तव्यं नाधमे पशुधर्मिणि ॥
प्रामाणिकार्थयोग्यत्वं पृच्छकस्याविचार्य च ।
यो वक्ति तमिह प्राज्ञाः प्राहुर्मूढतरं नरम् ॥
(मुमुक्षु-प्रकरण ११ । ४९-५०)

'ज्ञानी महात्माको चाहिये कि पूर्वापरका विचार करके यथार्थ निश्चय करनेमें जिसकी बुद्धि समर्थ हो, जिसके आचरण निन्दनीय न हों, ऐसे ही पुरुषको उसके पूछे हुए तत्त्वका उपदेश दे । जो आहार-निद्रा, भय-मैथुन आदि पशुधर्मसे सयुक्त है, ऐसे अधमको उपदेश न दे । प्रश्नकर्त्तामें श्रुति आदि प्रमाणोंके द्वारा निर्णय किये हुए तत्त्व-पदार्थको ग्रहण करनेकी योग्यता है या नहीं, इसका विचार किये बिना ही जो वक्ता उसे उपदेश देता है, उसको ज्ञानीजन इस लोकमें महान् मूढ बतलाते हैं ।'

इसीलिये महर्षि वसिष्ठ आदर्श गुरु हैं तथा भगवान् रामचन्द्र आदर्श शिष्य हैं । गुरु-शिष्यको इन्हींका अनुसरण करनेवाले होना चाहिये ।

मुमुक्षुके जीवनमें सहज ही शास्त्रानुकूल आचरण, संयम, सत्य, शम, दम, विषय-वैराग्य और मोक्षकी तीव्र इच्छा होनी ही चाहिये । महर्षि वसिष्ठ तो शम, दम सत्यादि गुणोंसे रहित मनुष्यको मनुष्य ही नहीं मानते । वे कहते हैं—

येषां गुणेष्वसंतोषो रागो येषां श्रुतं प्रति ।
सत्यव्यसनिनो ये च ते नराः पशवोऽपरे ॥
(स्थिति-प्रकरण ३२ । ४२)

'जिनका (इन शम-दमादि) गुणोंके विषयमें संतोष नहीं है (इनको जो बढाना ही चाहते हैं), जिनका शास्त्रके प्रति अनुराग है तथा जिनको सत्यके आचरणका ही व्यसन है, वे ही वास्तवमें मनुष्य हैं, दूसरे तो पशु ही हैं ।'

अतएव सच्चे कल्याणकामी पुरुषोंको इन शास्त्रानुमोदित गुणोंसे सम्पन्न होकर परमात्माके यथार्थ ज्ञानकी प्राप्तिके लिये पूर्णरूपसे साधनाभ्यास करना चाहिये । इसके लिये सच्चे महात्मा पुरुषोंका सङ्ग तथा सेवन (उनके कथनानुसार जीवन-निर्माण) आवश्यक है । इसके बिना कोरे तप, तीर्थ या शास्त्राध्ययनसे सफलता नहीं मिलती । पर महात्मा सच्चे होने चाहिये । और कुछ न हो तो इतना अवश्य देख ले कि हम जिनका सङ्ग करते हैं, उनकी संगतिसे दुर्गुणों-दुराचारोंका

नाश होता है या नहीं। उनके जीवनगत सहज शास्त्रप्रतिपादित आचरणोंसे हमें दुराचार-दुर्गुणोंके त्याग और सदाचार-सद्गुणोंके ग्रहणके लिये प्रेरणा मिलती है या नहीं। महर्षि वसिष्ठ कहते हैं—

लोभमोहरुषां यस्य तनुतानुदिनं भवेत्।
यथाशास्त्रं विहरति स्वकर्मसु स सज्जनः॥

(स्थिति-प्रकरण ३३। १५)

'जिसके सङ्गसे लोभ, मोह और क्रोध प्रतिदिन क्षीण होते हों और जो शास्त्रके अनुसार अपने कर्मोंका आचरण करनेमें लगा रहता हो, वह सत् पुरुष है।'

मोक्षके द्वारपर निवास करनेवाले ये चार द्वारपाल बतलाये गये हैं—शम, विचार, सतोष और साधुसङ्ग। इन चारोंकी भलीभाँति सेवा की जाती है तो ये मोक्षरूपी राजप्रासादका द्वार खोल देते हैं।

ऐसे सैकड़ों, हजारों वचन इस महान् ग्रन्थमें हैं, जिनमें शास्त्रोक्त आचरण, संयम, नियम आदि साधनोंकी उपादेयता और नितान्त प्रयोजनीयताका उपदेश भरा है।

योगवासिष्ठमें दैवकी बड़ी निन्दा तथा पौरुषकी प्रशसा की गयी है। एवं निष्कामभावसे सावधानीके साथ शास्त्रानुकूल सत्कर्म करनेपर बहुत जोर दिया गया है। महर्षि वसिष्ठ कहते हैं—

यस्तूदारचमत्कारः सदाचारविहारवान्।
स निर्याति जगन्मोहान्मृगेन्द्रः पञ्जरादिव॥

(मुमुक्षु-प्रकरण ६। २८)

व्यवहारसहस्राणि यान्युपायान्ति यान्ति च।
यथाशास्त्रं विहर्तव्यं तेषु त्यक्त्वा सुखासुखे॥
यथाशास्त्रमनुच्छिन्नां मर्यादां स्वामनुज्झतः।
उपतिष्ठन्ति सर्वाणि रत्नान्यम्बुनिधाविव॥
स्वार्थप्रापककार्यैकप्रयत्नपरता बुधैः।
प्रोक्ता पौरुषशब्देन सा सिद्ध्यै शास्त्रयन्त्रिता॥

(मुमुक्षु-प्रकरण ६। ३०–३२)

''जो पुरुष उदार-स्वभाव तथा सत्कर्मके सम्पादनमें कुशल है, सदाचार ही जिसका विहार है, वह जगत्के मोह-पाशसे वैसे ही निकल जाता है, जैसे पिंजरेसे सिंह। संसारमें आने जानेवाले सहस्रों व्यवहार हैं। उनमें सुख और दुःख-बुद्धिका त्याग करके शास्त्रानुकूल आचरण करना चाहिये। शास्त्रके अनुकूल और कभी उच्छिन्न न होनेवाली अपनी मर्यादाका जो त्याग नहीं करता, उस पुरुषको समस्त अभीष्ट वस्तुएँ वैसे ही प्राप्त हो जाती हैं, जैसे सागरमें गोता लगानेवालेको रत्नोंका समूह। जिसमें अपना मानव-जीवनका प्रधान कार्य—स्वार्थ सधता हो, उस स्वार्थकी प्राप्ति करानेवाले साधनोंमें ही तत्पर हो रहनेको विद्वान्लोग 'पौरुष' कहते हैं''।

ये समुद्योगमुत्सृज्य स्थिता दैवपरायणाः।
ते धर्ममर्थं कामं च नाशयन्त्यात्मविद्विषः॥

(मुमुक्षु-प्रकरण ७। १)

'जो लोग उद्योगका त्याग करके केवल दैवके भरोसे बैठे रहते हैं, वे अपने धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—चारों पुरुषार्थोंका नाश कर डालते हैं। वे आलसी मनुष्य आप ही अपने शत्रु हैं।'

अशुभेषु समाविष्टं शुभेष्वेवावतारयेत्।
प्रयत्नाच्चित्तमित्येष सर्वशास्त्रार्थसंग्रह॥
यच्छ्रेयो यदतुच्छं च यदपायविवर्जितम्।
तत्तदाचर यत्नेन पुत्रेति गुरवः स्थिताः॥

(मुमुक्षु-प्रकरण ७। १०-११)

'अशुभ कर्मोंमें लगे हुए मनको वहाँसे हटाकर प्रयत्नपूर्वक शुभ कर्मोंमें लगाना चाहिये। यह सब शास्त्रोंके सारका संग्रह है। जो वस्तु कल्याणकारी है, वह तुच्छ नहीं है (वही सबसे श्रेष्ठ है)। तथा जिसका कभी नाश नहीं होता, उसीका यत्नपूर्वक आचरण करना चाहिये—गुरुजन यही उपदेश देते हैं।'

जीवन्मुक्तके लक्षण बतलाते हुए महर्षि वसिष्ठ कहते हैं—

यथास्थितमिदं यस्य व्यवहारवतोऽपि च।
अस्तं गतं स्थितं व्योम जीवन्मुक्तः स उच्यते॥
बोधैकनिष्ठतां यातो जाग्रत्येव सुषुप्तवत्।
य आस्ते व्यवहर्तैव जीवन्मुक्तः स उच्यते॥
नोदेति नास्तमायाति सुखे दुःखे मुखप्रभा।
यथाप्राप्तस्थितेर्यस्य जीवन्मुक्तः स उच्यते॥

यो जागर्ति सुषुप्तस्थो यस्य जाग्रन्न विद्यते ।
यस्य निर्वासनो बोधो जीवन्मुक्तः स उच्यते ॥
यस्य नाहंकृतो भावो यस्य बुद्धिर्न लिप्यते ।
कुर्वतोऽकुर्वतो वापि स जीवन्मुक्त उच्यते ॥
यस्योन्मेषनिमेषार्द्धाद्विदः प्रलयसम्भवौ ।
पश्येत् त्रिलोक्याः स्वसमः स जीवन्मुक्त उच्यते ॥
यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः ।
हर्षामर्षभयोन्मुक्तः स जीवन्मुक्त उच्यते ॥
शान्तसंसारकलनः कलावानपि निष्कलः ।
यः सचित्तोऽपि निश्चित्तः स जीवन्मुक्त उच्यते ॥
(उत्पत्ति-प्रकरण ९ । ४--७, ९--१२)

'यथायोग्य व्यवहार करते हुए भी जिस पुरुषकी दृष्टिमें यह जगत् ज्यों-का-त्यों बना हुआ ही विलीन हो जाता है और आकाशके समान शून्य प्रतीत होने लगता है, वह जीवन्मुक्त कहलाता है । जो व्यवहारमें लगा हुआ ही एकमात्र बोधनिष्ठा-को प्राप्त होकर जाग्रत्-अवस्थामें भी सुषुप्त पुरुषकी भाँति राग-द्वेष तथा हर्ष-शोकादिसे रहित हो जाता है, उसे जीवन्मुक्त कहते हैं । जिसके मुखकी कान्ति सुखमें उदित नहीं होती—जगमगाती नहीं और दुःखमें अस्त—फीकी नहीं हो जाती और जो कुछ मिल जाय उसीमें संतोषपूर्वक जो जीवन-निर्वाह करता है, वह जीवन्मुक्त कहा जाता है । जो निर्विकार आत्मामें सुषुप्तिकी तरह स्थित रहता हुआ भी अविद्यारूप निद्राका निवारण हो जानेसे सदा जागता रहता है, पर जो जाग्रत् भी नहीं है, भोग-जगत्में सदा सोया हुआ है अर्थात् भोगबुद्धिसे जो किसी भी पदार्थका उपभोग नहीं करता और जिसका ज्ञान वासनारहित है, वह जीवन्मुक्त कहलाता है । जिसमें अहङ्कारका भाव नहीं है, जिसकी बुद्धि कर्म करते समय कर्तृत्वके और कर्म न करते समय अकर्तृत्वके अभिमानसे लिप्त नहीं होती, वह जीवन्मुक्त कहलाता है । जो ज्ञानस्वरूप परमात्माके किञ्चित् उन्मेष तथा निमेषमें ही तीनों लोकोंकी प्रलय तथा उत्पत्ति देखता है और जिसका सबके प्रति समान आत्मभाव है, वह जीवन्मुक्त कहलाता है । न तो जिससे लोगोंको उद्वेग होता है और न लोगोंसे जिसको उद्वेग होता है तथा जो हर्ष, अमर्ष और भयसे रहित है, वह जीवन्मुक्त कहा जाता है । जिसकी संसारके प्रति सत्यता-बुद्धि नहीं रही है, जो अवयवयुक्त दीखनेपर भी वस्तुतः अवयव-रहित है । जो चित्तयुक्त होकर भी वास्तवमें चित्तसे रहित है, वह जीवन्मुक्त कहा जाता है ।' जीवन्मुक्तकी इस स्वरूप-व्याख्यासे पता लगता है कि यथार्थ ज्ञान ही जीवन्मुक्तका स्वरूप होता है । केवल मौखिक ज्ञान तो प्रदर्शनमात्र तथा धोखेकी चीज है ।

योगवासिष्ठमें योगके साधन तथा योगसिद्धियोंका एवं योगभूमिकाओंका भी महत्त्वपूर्ण प्रतिपादन है। उनका मर्म बिना अनुभवी योगसिद्ध गुरुके समझमें आना बहुत कठिन है । योगवासिष्ठमें दर्शन तथा योगसम्बन्धी ऐसे-ऐसे शब्द आये हैं, जिनका अर्थ समझना केवल भाषाज्ञानसाध्य नहीं, परंतु साधन-साध्य है ।

योगवासिष्ठमें कर्म और भक्तिका कहीं निषेध नहीं है । कर्मकी तो परमावश्यकता ही बतलायी है । पौरुष कर्ममय ही होता है । अवश्य ही वह कर्म होना चाहिये कामना, आसक्ति तथा अहंकारसे रहित । यद्यपि भक्तिका वैष्णवशास्त्रों-जैसा वर्णन नहीं है, तथापि सदाचार-सत्सङ्गमूलक उपासनाका जगह-जगह प्रतिपादन है । प्रह्लादके प्रसङ्गसे भक्तिकी भी बहुत बातें आयी हैं । भगवान् श्रीरामचन्द्रको पूर्णब्रह्म बतलाकर स्वयं वसिष्ठने नमस्कार किया है । महर्षि भरद्वाजने अपने तथा भगवान् श्रीरामचन्द्रजीमें भेद बतलाते हुए महर्षि वाल्मीकिजीसे कहा है—

श्रीरामचन्द्रजी तो परम योगी, समस्त विश्वके वन्दनीय, देवताओंके ईश्वर, अजन्मा, अविनाशी, विशुद्ध ज्ञान-स्वभाव, समस्त गुणोंके निधान, सम्पूर्ण ऐश्वर्योंके आधार एवं तीनों लोकोंके उत्पादन, संरक्षण और अनुग्रह करनेवाले हैं—

स खलु परमयोगी विश्ववन्द्यः सुरेशो
जननमरणहीनः शुद्धबोधस्वभावः ।
सकलगुणनिधानं सन्निधानं रमाया-
स्त्रिजगदुदयरक्षानुग्रहाणामधीशः ॥
(नि० प्र० पूर्वार्ध० १२७ । २)

महर्षि विश्वामित्रने भगवान् श्रीरामचन्द्रकी बहुत बड़ी महिमाका गान किया है और वसिष्ठादि सभी उसे सुनकर अत्यन्त आह्लादित हुए हैं ।

रही श्रीरामचन्द्रजीका अज्ञानी बनकर ज्ञान प्राप्त करनेकी

बात, सो लीलामय भगवान्‌के लिये इसमें कौन-सी दोषकी बात है। जो भगवान् श्रीरामचन्द्र विद्यार्थी बनकर गुरु वसिष्ठसे विद्याध्ययन करते हैं, विश्वामित्रसे अस्त्र-शिक्षा ग्रहण करते हैं, सच्चे पतिके रूपमें सीताके दुःखसे महान् दुखी होते हैं, स्त्रैण तथा अज्ञकी भाँति सीताके लिये वन-वन रोते फिरते और जिस-किसीसे सीताका पता पूछते हैं, लक्ष्मण-के लिये विलाप-प्रलाप करते हैं, वे भगवान् यदि लोक-संग्रहके लिये अज्ञानी, वैराग्यवान् तथा मुमुक्षु सजकर आदर्श शिष्य-लीलामें प्रवृत्त होकर महर्षि वसिष्ठको ज्ञानशास्त्रके प्रतिपादन-में प्रवृत्त करते हैं और उसे सुनकर अपनेको कृतार्थ मानते हैं तो इससे उनकी परात्परता, परब्रह्मरूपता, विशुद्धज्ञानस्वरूपता, ईश्वरता आदिमें कहीं कुछ कमी आ जाती हो, यह तो मानना ही भूल है।

कुछ सज्जनोंका कथन है कि योगवासिष्ठमें बहुत अनुचित-रूपसे नारी-निन्दा की गयी है, पर वस्तुतः ऐसी भी बात नहीं है। यों तो भोगदृष्टिसे जो कुछ भी आसक्ति-कामना बढ़ानेवाली चीजें हैं, परमार्थ क्षेत्रमें वे सभी निन्दनीय तथा त्याज्य हैं—नारी, धन, राज्य, इन्द्रियोंके प्रत्येक विषय। पर योगवासिष्ठमें 'नारी-गौरव'की प्रतिष्ठा है। शिखिध्वज-जैसे राज्यत्यागी अरण्यवासी तपोमूर्ति पुरुषको चूडाला नारी ही विशुद्ध ज्ञानका उपदेश करके उन्हें परमपद प्राप्त करवाती है तथा अहंकारशून्य होकर राजकर्मके प्रतिपालनमें प्रवृत्त कराती है। चूडाला-जैसी योगसिद्धा, ज्ञान-विज्ञानसम्पन्ना, ब्रह्मैकनिष्ठ-ब्रह्मस्वरूपा नारीका जिस ग्रन्थमें विशद वर्णन हो और नारी इतनी उच्च स्तरतक पहुँच सकती है, इसका जिसमें प्रतिपादन हो, उस ग्रन्थको नारी-निन्दक मानना कभी युक्तिसंगत नहीं है।

योगवासिष्ठमें सुन्दर-सुन्दर आख्यानों, इतिहासोंके द्वारा बड़ी ही सुन्दर रीतिसे ब्रह्मतत्त्वका प्रतिपादन हुआ है, जो एक महान् कार्य है। इसमें दोषदृष्टि न करके सभीको अपनी रुचि तथा भावके अनुसार यथासाध्य लाभ उठाना चाहिये।

योगवासिष्ठका दुरुपयोग नहीं होना चाहिये

(लेखक—भक्त श्रीरामशरणदासजी)

'कल्याण'का विशेषाङ्क योगवासिष्ठाङ्क निकल रहा है, यह बड़े ही आनन्दकी बात है। यह बड़ा ही उपादेय सर्वश्रेष्ठ ज्ञानप्रतिपादक महान् ग्रन्थ है। इसमें आत्मा-परमात्मा, जीव-जगत्, बन्धन-मोक्ष आदि दुरूह विषयोंका बहुत ही सुन्दर स्पष्टीकरण किया गया है। अनन्तकोटि ब्रह्माण्डनायक स्वयं परमात्मा भगवान् श्रीराघवेन्द्र और परम पूज्य ज्ञानस्वरूप महर्षि वसिष्ठके संवादरूपमें यह निस्संदेह अत्युत्कृष्ट रचना है। इसलिये इसका प्रकाशन बहुत ही आदरणीय है। परंतु बड़े खेदके साथ निवेदन करते हुए मैं यह नम्रताके साथ चेतावनी देता हूँ कि इसका दुरुपयोग नहीं होना चाहिये। मैंने देखा है कि ढोंगी लोग संतों-का वेष बनाकर 'योगवासिष्ठ' और 'विचारसागर' लिये गाँव गाँव घूमते हैं, चेला-चेली बनाते हैं। शास्त्रीय वर्णाश्रमधर्म, सदाचार, शम, दम, ईश्वरभक्ति, भगवत्पूजन, नामजप कीर्तन, संध्या-अर्चना, श्राद्ध-तर्पण आदिका घोर विरोध करके लोगोंको उच्छृङ्खल बनाते हैं। उनको मनमाना आचरण करनेके लिये प्रेरणा देते हैं और अपना उल्लू सीधा करनेके लिये जगत्‌को तथा जागतिक व्यवहारोंको मिथ्या बनाकर 'अहं ब्रह्मास्मि' की रट लगाकर 'एक ब्रह्म' बने हुए ये अनधिकारी कलियुगी पाखण्डीलोग खुले-आम शास्त्रोंके सर्वथा विरुद्ध आलस्य, प्रमाद, अकर्मण्यता, विलास, व्यभिचार, अभक्ष्य-भक्षणका प्रचार करते हैं और जनताको ब्रह्मज्ञानके नामपर नरकानलमें झोंकते हैं। ऐसे लोगोंके द्वारा इसका दुरुपयोग नहीं होना चाहिये। यही मेरा नम्र निवेदन है।

श्रीगुरुवर-वसिष्ठ-स्तवन

(रचयिता—पं० श्रीरामनारायणजी त्रिपाठी 'मित्र' शास्त्री)

तप-तेज-पुंज जगदाभिराम ।
गुरुवर वसिष्ठ ! तुमको प्रणाम ॥

चारों वेदोंका रस वरिष्ठ ।
वेदान्त विषय जो था गरिष्ठ ॥
कर सरल कथाओंमें प्रविष्ट ।
कर दिया उसे लघुतम सुमिष्ट ॥
यह देख तुम्हारा कलित काम ।
गुरुवर वसिष्ठ ! तुमको प्रणाम ॥

यह युक्ति दिखाकर तुम न्यारी ।
बन गये विश्वके हितकारी ॥
अतएव ज्ञानके अधिकारी ।
हैं सभी तुम्हारे आभारी ॥
गा रहे तुम्हारे गुणग्राम ।
गुरुवर वसिष्ठ ! तुमको प्रणाम ॥

जिस समय सूर्यवंशी नरेश ।
संचालित करते थे स्वदेश ॥
उस समय उन्हें दे सदुपदेश ।
हरते थे तुम मानसिक क्लेश ॥
पाते थे वे जगसे विराम ।
गुरुवर वसिष्ठ ! तुमको प्रणाम ॥

श्रीरामचन्द्रको पात्र जान ।
जो दिया उन्हें था महाज्ञान ॥
मुनि वाल्मीकिने अमृत मान ।
वह भरा सुछन्दोंमें निदान ॥
रच ग्रन्थ योगवासिष्ठ नाम ।
गुरुवर वसिष्ठ ! तुमको प्रणाम ॥

यह ग्रन्थ मिटा विष-विषय चाव ।
अध्यात्म ओर करता झुकाव ॥
हर जीव ब्रह्मका भेदभाव ।
बन रहा भवाम्बुधि हेतु नाव ॥
यह श्रेय तुम्हींको है ललाम ।
गुरुवर वसिष्ठ ! तुमको प्रणाम ॥

हैं इसमें वर्णित वे सुयोग ।
हरते हैं जो भवजनित रोग ॥
जिनका समयोचित कर प्रयोग ।
पाते हैं शुभगति साधु लोग ॥
खण्डित कर माया मोह दाम ।
गुरुवर वसिष्ठ ! तुमको प्रणाम ॥

उपदेश तुम्हारा है विचित्र ।
जो करता है हियको पवित्र ॥
जिससे जन बनकर सच्चरित्र ।
हो जाते हैं ब्रह्मज्ञ 'मित्र' ॥
मिलता है उनको परम धाम ।
गुरुवर वसिष्ठ ! तुमको प्रणाम ॥

दशरथकी सभामें दिव्य महर्षियोंका अवतरण (वैराग्य-प्रकरण सर्ग २२)

श्रीपरमात्मने नमः

संक्षिप्त योगवासिष्ठ

वैराग्य-प्रकरण

सुतीक्ष्ण और अगस्ति, कारुण्य और अग्निवेश्य, सुरुचि तथा देवदूत और अरिष्टनेमि एवं वाल्मीकिके संवादका उल्लेख करते हुए भगवान्‌के श्रीरामावतारमें ऋषियोंके शापको कारण बताना

यतः सर्वाणि भूतानि प्रतिभान्ति स्थितानि च।
यत्रैवोपशमं यान्ति तस्मै सत्यात्मने नमः॥

सृष्टिके आरम्भमें सम्पूर्ण भूत जिनसे प्रकट होकर प्रतीतिके विषय होते है, स्थितिकालमें जिनमें ही स्थित होते है और प्रलयकाल आनेपर जिनमें ही लीन हो जाते है, उन सत्यस्वरूप परमात्माको नमस्कार है।

ज्ञाता ज्ञानं तथा ज्ञेयं द्रष्टा दर्शनदृश्यभूः।
कर्ता हेतुः क्रिया यस्मात् तस्मै ज्ञप्त्यात्मने नमः॥

ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय; द्रष्टा, दर्शन और दृश्य तथा कर्ता, कारण और क्रिया—इन सबका जिनसे ही आविर्भाव होता है, उन ज्ञानस्वरूप परमात्माको नमस्कार है।

स्फुरन्ति सीकरा यस्मादानन्दस्याम्बरेऽवनौ।
सर्वेषां जीवनं तस्मै ब्रह्मानन्दात्मने नमः॥

जिनसे स्वर्ग और भूतल आदि सभी लोकोमें आनन्द-रूपी जलके कण स्फुरित होते है—प्राणियोके अनुभवमे आते है तथा जो समस्त जीवोके जीवनाधार हैं, उन पूर्ण चिन्मय आनन्दके महासागररूप परब्रह्म परमात्माको नमस्कार है।

पूर्वकालमें सुतीक्ष्ण नामसे प्रसिद्ध कोई ब्राह्मण थे, जिनके मनमें संशय छा गया था; अतः उन्होने महर्षि अगस्ति[१]के आश्रममें जाकर उन महामुनिसे आदरपूर्वक पूछा—'भगवन्! आप धर्मके तत्त्वको जानते हैं। आपको सम्पूर्ण शास्त्रोके सिद्धान्तका सुनिश्चित ज्ञान है। मेरे हृदयमें एक महान् संदेह है, आप कृपापूर्वक इसका समाधान कीजिये। मोक्षका साधन कर्म है या ज्ञान है अथवा दोनो ही हैं? इन तीनो पक्षोमेंसे किसी एकका निश्चय करके जो वास्तवमें मोक्षका कारण हो, उसका प्रतिपादन कीजिये।'

अगस्तिने कहा—ब्रह्मन्! जैसे दोनो ही पंखोंसे पक्षियोका आकाशमें उड़ना सम्भव होता है, उसी प्रकार ज्ञान और निष्काम कर्म दोनोसे ही परमानन्दकी प्राप्ति होती है। इस विषयमें एक प्राचीन इतिहास है, जिसका

१. अगस्ति और अगस्त्य एक ही महर्षिके नाम हैं।

मै तुम्हारे समक्ष वर्णन करता हूँ। पहलेकी बात है, कारुण्य नामसे प्रसिद्ध एक ब्राह्मण थे, जो अग्निवेश्यके पुत्र थे। उन्होंने सम्पूर्ण वेदोका अध्ययन किया था तथा वे वेद-वेदाङ्गोके पारंगत विद्वान् थे। गुरुके यहाँसे विद्या पढ़कर अपने घर लौटनेके बाद वे संध्या-वन्दन आदि कोई भी कर्म न करते हुए चुपचाप बैठे रहने लगे। उनके मनमें संशय भरा हुआ था। पिता अग्निवेश्यने देखा कि मेरा पुत्र शास्त्रोक्त कर्मोका परित्याग करके निन्दनीय हो गया है, तब वे उसके हितके लिये इस प्रकार बोले।

अग्निवेश्यने कहा—बेटा! यह क्या बात है? तुम अपने कर्तव्य-कर्मोका पालन क्यों नहीं करते? बताओ तो सही। यदि सत्कर्मोंके अनुष्ठानमें नहीं लगोगे तो तुम्हे परम सिद्धि कैसे प्राप्त होगी? तुम जो इस कर्तव्य-कर्मसे निवृत्त हो रहे हो, इसमें क्या कारण है? यह मुझसे कहो।

कारुण्य बोले—पिताजी! आजीवन अग्निहोत्र और प्रतिदिन संध्योपासना करे—इस प्रवृत्तिरूप धर्मका श्रुति और स्मृतिने विधान अथवा प्रतिपादन किया है। साथ ही एक दूसरी श्रुति[1] भी है, जिसके अनुसार न धनसे, न कर्मसे और न संतानके उत्पादनसे ही मोक्ष प्राप्त होता है। मुख्य-मुख्य यतियोने एकमात्र त्यागसे ही अमृतस्वरूप मोक्ष-सुखका अनुभव किया है। पूज्य पिताजी! इन दो प्रकारकी श्रुतियोंमेंसे मुझे किसके आदेशका पालन करना चाहिये?' इस संशयमें पड़कर मै कर्मकी ओरसे उदासीन हो गया हूँ।

अगस्ति कहते हैं—तात सुतीक्ष्ण! पितासे यो कहकर वे ब्राह्मण कारुण्य चुप हो गये। पुत्रको इस प्रकार कर्मसे उदासीन हुआ देख पिताने पुनः उससे कहा।

अग्निवेश्य बोले—बेटा! मै तुमसे एक कथा कहता हूँ, उसे सुनो और उसके सम्पूर्ण तात्पर्यका अपने हृदयमें निश्चय कर लेनेके पश्चात् तुम्हारी जैसी इच्छा हो, वैसा करो।

सुरुचि नामसे प्रसिद्ध कोई देवलोककी स्त्री थी, जो अप्सराओमें श्रेष्ठ समझी जाती थी। एक दिन वह मयूरोंके झुंडसे घिरे हुए हिमालयके एक शिखरपर बैठी थी। उसी समय उसने अन्तरिक्षमें इन्द्रके एक दूतको कहीं जाते देखा। उसे देखकर अप्सराओमें श्रेष्ठ महाभागा सुरुचिने इस प्रकार पूछा—'महाभाग देवदूत! आप कहाँसे आ रहे है और इस समय कहाँ जायँगे? यह सब कृपा करके मुझे बताइये।'

देवदूतने कहा—भद्रे! सुनो; जो वृत्तान्त जैसे घटित हुआ है, वह सब मैं तुम्हे विस्तारसे बता रहा हूँ। सुन्दर भौंहोवाली सुन्दरी! धर्मात्मा राजा अरिष्टनेमि अपने पुत्रको राज्य देकर स्वय वीतराग हो तपस्याके लिये वनमें चले गये और अब गन्धमादन पर्वतपर वे तपस्या

१. न कर्मणा न प्रजया धनेन त्यागेनैके अमृतत्वमानशुः। (कैवल्य० २ तथा महानारायणोपनिषद् १०।५)

कर रहे हैं। वहाँ वनमें ज्यों ही उन्होंने दुस्तर तपस्या आरम्भ की, त्यों ही देवराज इन्द्रने मुझे आदेश दिया—'दूत! तुम यह विमान लेकर शीघ्र वहाँ जाओ। इस विमानमें अप्सराओंके समुदायको भी साथ ले लो। नाना प्रकारके वाद्य इसकी शोभा बढ़ाते रहें। गन्धर्व, सिद्ध, यक्ष और किंनर आदिसे भी यह सुशोभित होना चाहिये। इसमें ताल, वेणु और मृदङ्ग आदि भी रख लो। इस प्रकार भाँति-भाँतिके वृक्षोंसे भरे हुए सुन्दर गन्धमादन पर्वतपर पहुँचकर तुम राजा अरिष्टनेमिको इस विमानपर चढ़ा लो और उन्हें स्वर्गका सुख भोगनेके लिये अमरावती नगरीमें ले जाओ।'

देवराज इन्द्रकी यह आज्ञा पाकर मैं सामग्रियोंसे संयुक्त विमान ले उस पर्वतपर गया। वहाँ पहुँचकर राजा अरिष्टनेमिके आश्रमपर गया; फिर मैंने देवराज इन्द्रकी सारी आज्ञा राजासे कह सुनायी। शुभे! वे मेरी बात सुनकर संदेहमें पड़ गये और इस प्रकार बोले—'देवदूत! मैं आपसे एक बात पूछना चाहता हूँ, आप मेरे इस प्रश्नका उत्तर दें। स्वर्गमें कौन-कौन-से गुण हैं और कौन-कौन-से दोष? आप मेरे सामने उनका सुस्पष्ट वर्णन कीजिये। स्वर्गलोकमें रहनेके गुण-दोषको जाननेके पश्चात् मेरी जैसी रुचि होगी, वैसा करूँगा।'

मैंने कहा—'राजन्! स्वर्गलोकमें जीव अपने पुण्यकी सामग्रीके अनुसार उत्तम सुखका उपभोग करता है। उत्तम पुण्यसे उत्तम स्वर्गकी प्राप्ति होती है, मध्यम पुण्यसे मध्यम स्वर्ग मिलता है और इनकी अपेक्षा निम्न श्रेणीके पुण्यसे उसके अनुरूप स्वर्ग सुलभ होता है। इसके विपरीत कुछ नहीं होता। स्वर्गमें भी दूसरोंको अपनेसे ऊँची स्थितिमें देखकर लोगोंके लिये उनका उत्कर्ष असह्य हो उठता है। जो लोग समान स्थितिमें होते हैं, वे भी अपने बराबरवालोंके साथ स्पर्धा (लागडाँट) रखते हैं तथा जो स्वर्गवासी अपनेसे हीन स्थितिमें होते हैं, उनको अपनी अपेक्षा अल्पसुखी देखकर अधिक सुखवालोंको संतोष होता है। इस प्रकार असहिष्णुता, स्पर्धा और संतोषका अनुभव करते हुए पुण्यात्मा पुरुष तभीतक स्वर्गमें रहते हैं, जबतक उनके पुण्योंका भोग समाप्त नहीं हो जाता। पुण्योंका क्षय हो जानेपर वे जीव पुनः इस मर्त्यलोकमें प्रवेश करते हैं और पार्थिव शरीर धारण करते रहते हैं। राजन्! स्वर्गमें इसी तरहके गुण और दोष विद्यमान हैं।'

भद्रे! मेरी यह बात सुनकर राजाने इस प्रकार उत्तर दिया—'देवदूत! जहाँ ऐसा फल प्राप्त होता है, उस स्वर्गलोकमें मैं नहीं जाना चाहता। आप इस विमानको लेकर जैसे आये थे, वैसे ही देवराज इन्द्रके पास चले जाइये। आपको नमस्कार है।'

भद्रे! जब राजाने मुझसे ऐसी बात कही, तब मैं इन्द्रके समक्ष यह वृत्तान्त निवेदन करनेके लिये लौट गया। वहाँ जब मैंने सब बातें ज्यों-की-त्यों कह सुनायीं, तब देवराज इन्द्रको महान् आश्चर्य हुआ और वे स्निग्ध एवं मधुर वाणीमें मुझसे पुनः बोले।

इन्द्रने कहा—दूत! तुम फिर वहाँ जाओ और उस विरक्त राजाको आत्मज्ञानकी प्राप्तिके लिये तत्त्वज्ञ महर्षि वाल्मीकिके आश्रममें ले जाओ। वहाँ महर्षि वाल्मीकिसे मेरा यह संदेश कह देना—'महामुने! इन विनयशील, वीतराग तथा स्वर्गकी भी इच्छा न रखनेवाले नरेशको आप तत्त्वज्ञानका उपदेश दीजिये। ये जन्म-मरणरूप संसार-दुःखसे पीड़ित हैं; अतः आपके दिये हुए तत्त्वज्ञानके उपदेशसे इन्हें मोक्ष प्राप्त होगा।'

यों कहकर देवराजने मुझे राजा अरिष्टनेमिके पास भेजा। तब मैंने पुनः वहाँ जाकर राजाको वाल्मीकिजीके पास पहुँचाया, उनसे देवराज इन्द्रका संदेश कहा तथा राजाने उन महर्षिसे मोक्षका साधन पूछा। तदनन्तर वाल्मीकिजीने अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक कुशलप्रश्नकी इस आरम्भ करते हुए राजासे उनके आरोग्यका समाचार पूछा।

राजाने कहा—भगवन्! आपको धर्मके तत्त्वका ज्ञान है। जाननेयोग्य जितनी भी बाते है, वे सब आपको ज्ञात हैं। विद्वानोंमें श्रेष्ठ महर्षे! आपके दर्शनसे मै कृतार्थ हो गया। यही मेरी कुशल है। भगवन्! मै आपसे कुछ पूछना चाहता हूँ। आप बिना किसी विघ्न-बाधाके मेरी शङ्काका समाधान करें। संसार-बन्धनके दुःखसे मुझे जो पीडा हो रही है, उससे किस प्रकार मेरा छुटकारा होगा? यह बताइये।

श्रीवाल्मीकिजीने कहा—राजन्! सुनो; मैं तुमसे अखण्ड रामायणकी कथा कहूँगा। उसे सुनकर यत्नपूर्वक हृदयमें धारण कर लेनेपर तुम जीवन्मुक्त हो जाओगे। राजेन्द्र! वह रामायण महर्षि वसिष्ठ और श्रीरामके सवादरूपमें वर्णित है। वह मोक्षप्राप्तिके उपायकी मङ्गलमयी कथा है। मैने तुम्हारे स्वभावको समझ लिया है; अतः तुम्हें अधिकारी मानकर मै तुमसे वह कथा कहूँगा। विद्वान् नरेश! सुनो।

राजाने पूछा—तत्त्वज्ञानियोंमें श्रेष्ठ महामुने! श्रीराम कौन हैं? उनका स्वरूप कैसा है? वे किसके वंशज थे? वे बद्ध थे या मुक्त? पहले आप मुझे इन्हीं बातों-का निश्चित ज्ञान प्रदान कीजिये।

श्रीवाल्मीकिजीने कहा—स्वयं भगवान् श्रीहरि ही शाप-के पालनके बहाने राजा श्रीरामके रूपमें अवतीर्ण हुए थे। वे प्रभु सर्वज्ञ होनेपर भी (अपने भक्त महर्षियोंकी वाणीको सत्य करनेके लिये ही) आरोपित अथवा स्वेच्छासे गृहीत अज्ञानसे युक्त हो साधारण मनुष्योंकी भाँति अल्पज्ञ-से हो गये।

राजाने पूछा—महर्षे! श्रीराम तो सच्चिदानन्द-स्वरूप चैतन्यघनविग्रह थे। उन्हें शाप प्राप्त होनेका क्या कारण था? यह बताइये। साथ ही यह भी कहिये कि उन्हें शाप देनेवाला कौन था?

श्रीवाल्मीकिजीने कहा—राजन्! (ब्रह्माजीके मानस पुत्र) सनत्कुमार, जो सर्वथा निष्काम थे, ब्रह्मलोकमें निवास करते थे। एक दिन त्रिलोकीनाथ सर्वशक्तिमान् भगवान् विष्णु वैकुण्ठलोकसे वहाँ पधारे। उस समय ब्रह्माजीने वहाँ उनका पूजन किया। सत्यलोकमें निवास करनेवाले दूसरे-दूसरे महात्माओंने भी उनका स्वागत-सत्कार किया। केवल सनत्कुमारने उनके आदर-सत्कारमें कोई भाग नहीं लिया—वे चुपचाप बैठे ही रह गये। तब उनकी ओर देखकर सर्वेश्वर भगवान् श्रीहरिने कहा—'सनत्कुमार! तुम अपनेको निष्काम समझकर अहंकारी हो गये हो, इसीलिये जडवत् स्तब्ध बने बैठे हो। इस गर्वयुक्त चेष्टाके कारण तुम शाप या दण्ड पानेके योग्य हो, अतः शरजन्मा कुमारके नामसे विख्यात हो दूसरा शरीर धारण करो।' यह सुनकर सनत्कुमारने भी भगवान् विष्णुको शाप दिया—'देवेश्वर! आप भी अपनी सर्वज्ञताको कुछ कालके लिये छोड़कर अज्ञानी जीवके समान हो जायँगे।' एक समय अपनी पत्नीको श्रीहरिके चक्रसे मारी गयी देख महर्षि भृगुका क्रोध बहुत बढ़ गया। वे उन्हे शाप देते हुए बोले—'विष्णो!

आपको भी कुछ कालके लिये अपनी पत्नीसे वियोगका कष्ट सहना पड़ेगा।' इस प्रकार सनत्कुमार और भृगुके शाप देनेपर (उनकी वाणी सत्य करनेके लिये) भगवान् विष्णु उस शापसे मनुष्यरूपमें अवतीर्ण हुए। राजन्! भगवान् विष्णुको शापका बहाना क्यों लेना पड़ा, इसका सब कारण मैंने तुम्हें बता दिया, अब तुम्हारे प्रश्नके अनुसार अन्य सारी बातें भी बता रहा हूँ। तुम सावधान होकर सुनो। (सर्ग १)

इस शास्त्रके अधिकारीका निरूपण, रामायणके अनुशीलनकी महिमा, भरद्वाजको ब्रह्माजीका वरदान तथा ब्रह्माजीकी आज्ञासे वाल्मीकिका भरद्वाजको संसार-दुःखसे छुटकारा पानेके निमित्त उपदेश देनेके लिये प्रवृत्त होना

दिवि भूमौ तथाऽऽकाशे बहिरन्तश्च मे विभुः।
यो विभात्यवभासात्मा तस्मै सर्वात्मने नमः॥

जो प्रकाश (ज्ञान)-स्वरूप सर्वव्यापी परमात्मा स्वर्गमें, भूतलमें, आकाशमें तथा हमारे अंदर और बाहर—सर्वत्र प्रकाशित हो रहे हैं, उन सर्वात्माको नमस्कार है।

श्रीवाल्मीकिजी कहते हैं—राजन्! मैं संसाररूपी बन्धनमें बँधा हुआ हूँ, किंतु इससे मुक्त हो सकता हूँ—ऐसा जिसका निश्चय है तथा जो न तो अत्यन्त अज्ञानी है और न तत्त्वज्ञानी ही है, वही इस शास्त्रको सुनने अथवा पढ़नेका अधिकारी है। जो पहले कथारूपी उपायसे युक्त रामायणके बाल, अयोध्या आदि सभी काण्डोंका विचार (परिशीलन) करके मोक्षके उपायभूत इन वैराग्य आदि छः प्रकरणोंका विचार (अनुशीलन) करता है, वह विद्वान् पुरुष फिर इस संसारमें जन्म नहीं लेता (वह यहाँके जन्म आदि दुःखोंसे सदाके लिये छुटकारा पा जाता है)। शत्रुओंका मर्दन करनेवाले नरेश! यह रामायण पूर्व और उत्तर—दो खण्डोंसे युक्त है। इसमें राग-द्वेष आदि दोषोंको दूर करनेके लिये रामकथारूपी प्रबल उपाय बताये गये हैं। पहले इन बाल आदि सात काण्डोंकी रचना करके मैंने एकाग्रचित्त हो अपने बुद्धिमान् एवं विनयशील शिष्य भरद्वाजको इसका ज्ञान प्रदान किया; ठीक उसी तरह, जैसे समुद्र मणि या रत्नकी इच्छा रखनेवाले याचकको मणि प्रदान करता है। बुद्धिमान् भरद्वाजने मुझसे कथारूपी उपायवाले इन सात काण्डोंका अध्ययन करनेके पश्चात् मेरुपर्वतके किसी गहन वनमें ब्रह्माजीके सामने इनका वर्णन किया। इससे महान् आशयवाले लोकपितामह भगवान् ब्रह्मा भरद्वाजके ऊपर बहुत संतुष्ट हुए और उनसे बोले—'बेटा! तुम मुझसे कोई वर माँग लो।'

भरद्वाजने कहा—भगवन् ! भूत, भविष्य और वर्तमानके स्वामी पितामह ! जिस उपायसे यह समस्त मानव-समुदाय सम्पूर्ण दुःखसे छुटकारा पा जाय, वह मुझे बताइये । आज मुझे यही वर अच्छा लगता है ।

श्रीब्रह्माजीने कहा—वत्स ! तुम इस विषयमें शीघ्र ही प्रयत्नपूर्वक अपने गुरु वाल्मीकिजीसे प्रार्थना करो । उन्होंने जिस निर्दोष रामायणकी रचना आरम्भ की है, उसका श्रवण कर लेनेपर मनुष्य सम्पूर्ण मोहसे पार हो जायँगे ।

श्रीवाल्मीकिजी कहते हैं—भरद्वाजसे यों कहकर सम्पूर्ण भूतोंके स्रष्टा भगवान् ब्रह्मा उनके साथ ही मेरे आश्रमपर आये । उस समय मैंने शीघ्र ही अर्घ्य, पाद्य आदिके द्वारा उन भगवान् ब्रह्माजीका पूजन किया । तत्पश्चात् समस्त प्राणियोंके हितमें तत्पर रहनेवाले ब्रह्माजीने मुझसे कहा—'श्रेष्ठ महर्षे ! श्रीरामचन्द्रजीके स्वभाव एवं स्वरूपका वर्णन करनेवाले इस निर्दोष रामायणका आरम्भ करके जबतक इसकी समाप्ति न हो जाय, तबतक कितना ही उद्वेग क्यों न हो, तुम इसका परित्याग न करना । इस ग्रन्थके अनुशीलनसे यह जगत् इस संसाररूपी क्लेशसे उसी प्रकार शीघ्र पार हो जायगा, जैसे जहाजके द्वारा लोग अविलम्ब समुद्रसे पार हो जाते हैं । तुम लोकहितके लिये इस रामायण नामक शास्त्र-की रचना करो । इसी बातको कहनेके लिये मैं स्वयं यहाँतक आया हूँ ।' तत्पश्चात् वे मेरे उस पवित्र आश्रमसे उसी क्षण अदृश्य हो गये । तब भरद्वाजने कहा—'भगवन् ! महामना श्रीरामचन्द्रजी, भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न, यशस्विनी सीतादेवी तथा श्रीरामचन्द्रजीका अनुसरण करनेवाले परम बुद्धिमान् मन्त्रिपुत्र—इन सबने इस संसाररूपी संकटमें पड़कर कैसा व्यवहार किया था, यह बात मुझे बताइये । इसे सुनकर अन्य लोगोंके साथ मैं भी वैसा ही बर्ताव करूँगा ।'

राजेन्द्र ! जब भरद्वाजने आदरपूर्वक मुझसे पूर्वोक्त विषयका प्रतिपादन करनेके लिये अनुरोध किया, तब मैं भगवान् ब्रह्माजीकी आज्ञाका पालन करनेके लिये उक्त विषयके वर्णनमें प्रवृत्त हुआ और बोला—'वत्स भरद्वाज ! सुनो; तुमने जैसा पूछा है, उसके अनुसार तुम्हें सब कुछ बताता हूँ । मेरे उपदेशको सुननेसे तुम अपना सारा मोह दूर कर सकोगे । बुद्धिमान् भरद्वाज ! तुम वैसा ही व्यवहार करो, जैसा कि आनन्दस्वरूप कमलनयन भगवान् श्रीरामने समस्त संसारमें अनासक्तभावसे रह-कर किया था ।'

महामना भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न, कौसल्या, सुमित्रा, सीता, राजा दशरथ, श्रीरामसखा कृतास्त्र और अविरोध, पुरोहित वसिष्ठ, वामदेव तथा अन्यान्य आठ मन्त्री—ये सभी ज्ञानमें पारंगत थे । धृष्टि, जयन्त, भास, सत्यवादी विजय, विभीषण, सुषेण, हनुमान् और इन्द्रजित्—ये श्रीरामके आठ मन्त्री बताये गये हैं । ये सब-के-सब समदर्शी थे । इनका चित्त विषयोंमें आसक्त नहीं था । ये सभी जीवन्मुक्त महात्मा थे और प्रारब्ध-वश जो कुछ प्राप्त होता, उसीमें संतुष्ट रहकर तदनुकूल व्यवहार करते थे । बेटा ! इन लोगोंने जिस प्रकार होम, दान और आदान-प्रदान किया था, इन्होंने जगत्में जिस प्रकार निवास किया था और जिस प्रकार स्मरण-चिन्तन अथवा श्रौत-स्मार्त कर्मोंका पालन किया था, उसी प्रकार यदि तुम भी बर्ताव करते हो तो संसार-रूपी संकटसे छूटे हुए ही हो । उदार एवं सत्त्वगुणसे सम्पन्न पुरुष अपार संसार-समुद्रमें गिरनेपर भी यदि उपर्युक्त उत्कृष्ट साधनको अपना ले तो उसे न तो शोक प्राप्त होता है और न वह दीनता अथवा दुःखमें ही पड़ता है । सब प्रकारकी चिन्ताओंसे मुक्त हो वह परमानन्द-सुधाका पान करके सदाके लिये परम तृप्त हो जाता है।

(सर्ग २)

जीवन्मुक्तके स्वरूपपर विचार, जगत्‌के मिथ्यात्व तथा द्विविध वासनाका निरूपण तथा भगवान् श्रीरामकी तीर्थ-यात्राका वर्णन

भरद्वाज बोले—ब्रह्मन्! आप श्रीरामचन्द्रजीकी कथासे आरम्भ करके क्रमशः जीवन्मुक्तकी स्थितिका मुझसे वर्णन कीजिये, जिससे मैं सदाके लिये परम सुखी हो जाऊँ।

श्रीवाल्मीकिजीने कहा—साधु पुरुष भरद्वाज! जैसे रूपरहित आकाशमें नील-पीत आदि वर्णोंका भ्रम होता है, उसी प्रकार निर्गुण-निराकार ब्रह्ममें अज्ञानवश जगत्‌की सत्ताका भ्रम होता है। यह जो जगत्सम्बन्धी भ्रम उत्पन्न हो गया है, इसे इस तरह भुला दिया जाय कि फिर कभी इसका स्मरण ही न हो—इसीको मैं उत्तम ज्ञान मानता हूँ। इस दृश्य-प्रपञ्चका अत्यन्त अभाव है—यह बिना हुए ही भासित हो रहा है, जबतक ऐसा बोध नहीं होता, तबतक कोई कभी भी उस उत्कृष्ट आत्मज्ञानका अनुभव नहीं कर सकता; इसलिये आत्मज्ञानका अन्वेषण—उसकी प्राप्तिके लिये प्रयत्न करना चाहिये। इस (योग-वासिष्ठरूप) शास्त्रका ज्ञान होनेपर इसी जीवनमें उस आत्मतत्त्वका बोध हो जाय—यह सर्वथा सम्भव ही है—वह होकर ही रहेगा। इसी उद्देश्यसे इस शास्त्रका विस्तार (प्रचार-प्रसार) किया जाता है। यदि तुम (श्रद्धा-भक्तिके साथ) इस शास्त्रका श्रवण करोगे तो निश्चय ही तुम्हें उस आत्मतत्त्वका ज्ञान प्राप्त हो जायगा; अन्यथा उसकी प्राप्ति असम्भव है।

निष्पाप भरद्वाज! यह जगत्‌रूपी भ्रम यद्यपि प्रत्यक्ष दिखायी देता है, तो भी इस शास्त्रके विचारसे अनायास ही ऐसा अनुभव हो जाता है कि 'यह है ही नहीं'—ठीक उसी तरह जैसे आकाशमें नील आदि वर्ण प्रत्यक्ष दीखनेपर भी विचार करनेसे बिना परिश्रमके ही यह समझमें आ जाता है कि इसका अस्तित्व नहीं है। यह दृश्य-जगत् वास्तवमें है ही नहीं, ऐसा बोध होनेपर जब मनसे दृश्य-प्रपञ्चका मार्जन (निवारण या अभाव) हो जाय, तब परमनिर्वाणरूप शान्तिका स्वतः अनुभव होने लगता है। ब्रह्मन्! सम्पूर्णरूपसे वासनाओंका जो परित्याग (अत्यन्त अभाव) है, वही उत्तम मोक्ष कहलाता है। उसे अविद्यारूपी मलसे रहित ज्ञानी ही प्राप्त कर सकते हैं। विप्रवर! जैसे शीतके नष्ट होनेपर हिमकण तुरंत गल जाते हैं, उसी प्रकार वासनाओंके क्षीण हो जानेपर (वासना-पुञ्जरूप) चित्त भी शीघ्र ही गल जाता है (उसका अभाव-सा हो जाता है)।

वासना दो प्रकारकी बतायी गयी है—एक शुद्ध वासना और दूसरी मलिन वासना। मलिन वासना जन्मकी हेतुभूत है—उसके द्वारा जीव जन्म-मृत्युके चक्रमें पड़ता है और शुद्ध वासना जन्मका नाश करनेवाली (अर्थात् मोक्षकी साधिका) है। विद्वानोंने मलिन वासनाको पुनर्जन्मकी प्राप्ति करानेवाली बताया है। अज्ञान ही उसकी घनीभूत आकृति है तथा वह बढ़े हुए अहंकारसे सुशोभित होती है। जो भुने हुए बीजके समान पुनर्जन्मरूपी अङ्कुरको उत्पन्न करनेकी शक्तिको त्यागकर केवल शरीरधारण मात्रके लिये स्थित रहती है, वह वासना 'शुद्धा' कही गयी है। जो लोग शुद्ध वासनासे युक्त हैं, वे फिर जन्मरूप अनर्थके भाजन नहीं होते। जानने योग्य परमात्माके तत्त्वको जाननेवाले वे परम बुद्धिमान् पुरुष 'जीवन्मुक्त' कहलाते हैं।

महामते भरद्वाज! अब तुम श्रीरामचन्द्रजीकी जीवन-चर्यासे सम्बन्ध रखनेवाली इस मङ्गलकारिणी कथाका श्रवण करो। मैं उसका वर्णन करूँगा, जिससे तुम सदाके लिये सम्पूर्ण तत्त्वका ज्ञान प्राप्त कर लोगे। वत्स! जिन्हें कहींसे भी कोई भय नहीं है, वे कमल-नयन भगवान् श्रीराम जब अध्ययनके पश्चात् विद्यालयसे निकलकर घरको लौटे, तब भाँति-भाँतिकी लीलाएँ करते हुए उन्होंने राजभवनमें कुछ दिन व्यतीत किये। तदनन्तर

कुछ समय बीतनेपर, जब कि राजा दशरथ भूमण्डलके पालनमें लगे थे और प्रजावर्गके लोग रोग-शोकसे रहित हो बड़े सुखसे दिन बिता रहे थे, एक दिन अनन्त कल्याणमय गुणोंसे सुशोभित होनेवाले श्रीरामचन्द्रजीके मनमें तीर्थों तथा पुण्यमय आश्रमोंके दर्शनकी अत्यन्त उत्कण्ठा जाग उठी। तब श्रीरामने पिताके पास जाकर उनके चरण-कमलोंमें प्रणाम किया और इस प्रकार कहा।

श्रीराम बोले—पिताजी! मेरे स्वामी महाराज! मेरे मनमें तीर्थों, देवमन्दिरो, वनों तथा आश्रमोका दर्शन करनेके लिये बड़ी उत्कण्ठा हो रही है। आपके समक्ष मेरी यह पहली याचना है, आप इसे सफल करने योग्य हैं। नाथ! संसारमें ऐसा कोई याचक नही है, जिसे अभीष्ट वस्तु देकर आपने उसका आदर न किया हो।

श्रीराम पहली बार प्रार्थी होकर राजाके समक्ष उपस्थित हुए थे। उनके इस प्रकार प्रार्थना करनेपर राजा दशरथने वसिष्ठजीके साथ विचार करके उन्हें तीर्थ-दर्शनके लिये आज्ञा दे दी। उस समय शुभ नक्षत्र और शुभ दिनमें ब्राह्मणोंने आकर उनके लिये स्वस्तिवाचन किया। उनके शरीरको माङ्गलिक वेष-भूषासे अलंकृत किया गया। माताओंने उन्हे हृदयसे लगा-लगाकर आशीर्वाद दिये और आभूषण पहनाये। फिर वे रघुनाथजी तीर्थ-यात्राके लिये उद्यत हो लक्ष्मण और शत्रुघ्न—इन दो भाइयों, वसिष्ठजीके भेजे हुए शास्त्रज्ञ ब्राह्मणों तथा अपने ऊपर स्नेह रखनेवाले कुछ इने-गिने राजकुमारोंके साथ अपने उस राजभवनसे वाहर निकले। श्रीरामचन्द्रजी दान-मान आदिसे ब्राह्मणोंको अपने अनुकूल वनाते, सब ओरसे प्रजाओंके आशीर्वाद सुनते और सम्पूर्ण दिशाओंके दृश्योंपर दृष्टिपात करते वन्य-प्रदेशोमें भ्रमण करने लगे। उन्होंने अपने निवास-स्थान उस कोसल जनपदसे आरम्भ करके स्नान, दान, तप और ध्यानपूर्वक क्रमशः समस्त तीर्थ-स्थानोंका दर्शन किया। नदियोंके पवित्र तट, पुण्य वन, पावन आश्रम, जंगल, जनपदोंकी सीमाओंमें स्थित समुद्र और पर्वतोंके तट, चन्द्रमाके समान उज्ज्वल आभावाली गङ्गा, नील कमलकी-सी कान्तिवाली निर्मल कलिन्दनन्दिनी यमुना, सरस्वती, शतद्रू (सतलज), चन्द्रभागा (चिनाव), इरावती (रावी), वेणी, कृष्णवेणी[1], निर्विन्ध्या, सरयू, चर्मण्वती (चम्बल), वितस्ता (झेलम), विपाशा (व्यास), बाहुदा[2], प्रयाग, नैमिषारण्य, धर्मारण्य, गया, वाराणसी (काशीपुरी), श्रीशैल, केदारनाथ, पुष्कर, क्रमप्राप्त मानस सरोवर, उत्तरमानस, वड़वामुख, अन्य तीर्थसमुदाय, अग्नितीर्थ, महातीर्थ, इन्द्रद्युम्न सरोवर आदि पुण्यतीर्थ, सरोवर, सरिताएँ, नद, तालाब या कुण्ड—इन सबका उन्होंने आदरपूर्वक दर्शन किया।

---

१. वेणी नदी कृष्णामें मिलनेसे पहले केवल वेणी कहलाती है, कृष्णामें सगम होनेके पश्चात् उसका नाम कृष्णवेणी हो जाता है।

२. कुछ लोगोंकी मान्यताके अनुसार वाहुदा सुप्रसिद्ध राप्ती नदीकी एक सहायक नदी है।

स्वामी कार्तिकेय, शालग्रामस्वरूप श्रीविष्णु, भगवान् विष्णु और शिवके चौसठ स्थान, नाना प्रकारके आश्चर्य-जनक दृश्योंसे विचित्र शोभा धारण करनेवाले चारों समुद्रोंके तट, विन्ध्यपर्वत और मन्दराचलके कुञ्ज, हिमालय आदि सात कुल-पर्वतोंके स्थान तथा बड़े-बड़े राजर्षियों, ब्रह्मर्षियों, देवताओं और ब्राह्मणोंके मङ्गलकारी पावन आश्रमोंका भी श्रीरामचन्द्रजीने श्रद्धापूर्वक दर्शन किया। दूसरोंको मान देनेवाले श्रीरघुनाथजी अपने भाइयोंके साथ बारंबार चारों दिशाओंके प्रान्तभागों तथा भूमण्डलके सभी छोरोंमें घूमते फिरे। जैसे देवता आदिसे सम्मानित भगवान् शंकर सम्पूर्ण दिशाओंमें विहार करके पुनः शिवलोकमें लौट आते हैं, उसी प्रकार रघुनन्दन श्रीराम देवताओं, किंनरों तथा मनुष्योंसे सम्मानित हो इस सम्पूर्ण भूमण्डलका अवलोकन करके फिर अपने घर लौट आये। (सर्ग ३)

तीर्थ-यात्रासे लौटे हुए श्रीरामकी दिनचर्या एवं पिताके घरमें निवास; राजा दशरथके यहाँ विश्वामित्रका आगमन और राजाद्वारा उनका सत्कार

श्रीवाल्मीकिजी कहते हैं—भरद्वाज! जब श्रीमान् रामचन्द्र नगरको लौटे, उस समय (उनका स्वागत करते हुए) पुरवासीजन उनके ऊपर राशि-राशि पुष्प बिखेरने लगे। उस अवस्थामें, जैसे इन्द्र-पुत्र जयन्त अपने स्वर्गीय भवनमें प्रवेश करते हैं, उसी प्रकार उन्होंने अपने महलमें प्रवेश किया। वहाँ पहुँचकर रघुनाथजीने पहले पिताको प्रणाम किया, फिर क्रमशः कुलगुरु वसिष्ठजीको, बड़े बन्धु-बान्धवोंको, ब्राह्मणोंको तथा कुल-के बड़े-बूढ़े लोगोंको मस्तक झुकाया। फिर सुहृदों, बन्धुओं, पिता तथा ब्राह्मणसमुदायने श्रीरामको बारंबार हृदयसे लगाया और श्रीरामने भी उनके प्रति अभिवादन एवं प्रिय-भाषण आदि यथोचित आचार-व्यवहारका निर्वाह किया। उस समय श्रीरघुनाथजी आनन्दोल्लासने फूले नहीं समाते थे। अयोध्यामें श्रीरामचन्द्रजीके शुभागमनके उपलक्ष्यमें लगातार आठ दिनोंतक आनन्दोत्सव मनाया गया। उस समय हर्षसे मतवाली जनताके द्वारा सुखपूर्वक किये गये गीत-वाद्य आदिका मधुर कोलाहल सब ओर व्याप्त हो गया था। तदनन्तर श्रीरघुनाथजी विभिन्न देशोंमें प्रचलित नाना प्रकारके रहन-सहनका जहाँ-तहाँ वर्णन करते हुए घरमें ही सुखपूर्वक रहने लगे।

श्रीरामचन्द्रजी प्रतिदिन सवेरे उठकर (स्नान आदिके पश्चात्) विधिपूर्वक संध्या-वन्दन करके राजसभामें बैठे हुए अपने इन्द्रतुल्य तेजस्वी पिता महाराज दशरथका दर्शन किया करते थे। वहाँ [illegible] वसिष्ठ आदिके साथ बैठकर [illegible] कथा-वार्ता सुना करते थे। भाइयोंके साथ [illegible] पर श्रीरघुनाथजी प्रायः ऐसी ही दिनचर्याको [illegible] पिताके घरमें सुखपूर्वक रहते थे। [illegible]!